काव्यांग-कौमुदी

(प्रथम कला)

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
मोहनवल्लभ पंत

प्रवर्धित

(प्रथम कला)

लेखक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आचार्य और अध्यक्ष, हिंदीविभाग
मगध विश्वविद्यालय, गया

मोहनवल्लभ पंत

आचार्य और अध्यक्ष, हिंदीविभाग
वल्लभ-विद्यापीठ, आनंद

प्रकाशक

नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स

बाँसफाटक, वाराणसी।

प्रवर्धित संस्करण] २०२१ [मूल्य १.५० रुपए

संस्करण : प्रवर्धित
आवृत्ति : तृतीय
संवत् : २०२१
संख्या : ३१००
मूल्य : १.५० रुपए
मुद्रक : मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी ।

प्रवर्धित संस्करण

(१)

'प्रथम कला' का लेखन दो युगों (२४ वर्षों) पूर्व हुआ था। वर्ष भर के भीतर ही प्रकाशन भी हो गया। सप्त आवृत्तियाँ भी हो चुकीं। लेखन के समय दोनो लेखक काशी में ही थे। अब जब विभिन्न विश्वविद्यालयों और शिक्षापरिषदों के पाठ्यक्रमों के अनुरूप प्रतिसंस्कार का अवसर आया तो दोनो के बीच न जाने कितने नदी-नाले, वन-पर्वत आ गए। फलतः प्रतिसंस्कार का सारा कार्य मुझे अकेले ही करना पड़ा। परिष्कार कहीं उत्तम होता यदि दोनो का सहयोग हो पाता, फिर भी यह संस्करण बुरे अर्थ में अनुत्तम नहीं हुआ है, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

जिस समय इसका लेखनकार्य संपन्न हुआ था उस समय से इस समय तक साहित्यशास्त्र का इस प्रकार का बहुत विवेचन होता रहा है; अनेक पोथियाँ 'कौमुदी' की होड़ाहोड़ी निकलीं, निकल रही हैं और कितनी ही क्षितिज के उस ओर ही छिटकी हुई हैं, कुछ समयोपरांत सामने आएँगी। आरंभ में यह अकेली थी, अब यह दुकेली ही नहीं, भीड़-भड़क्के में पड़ी हुई है। पर आश्वस्त हूँ कि दूर से ही इसकी पहचान हो जाती है, संमर्द में दब-पिस जाने का खटका न था, न है। भविष्य की भगवान् जाने।

जो परिष्कार किया गया है वह इसे समयानुरूप बनाने के

लिए, 'मुद्रा राक्षस' के कारण जो अशुद्धियाँ आ गई थीं उन्हें ठीक कर देने के लिए। जो चुनाव किया गया था उसमें घट-बढ़ केवल अलंकारों की (विभिन्न शिक्षा-परिषदों द्वारा) हुई है। जो अलंकार हमने चुने थे वे बहुप्रचलित थे, नवविकसित मस्तिष्क के लिए सुलभ थे। किसी का भेदोपभेद के रूप में भी अधिक विस्तार नहीं किया गया था। कुछ उपयोगी और आवश्यक भेद ही समझाए गए थे। पर 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' के अनुसार विविध शिक्षा-परिषदों द्वारा भेदोपभेदादि का उपबृंहण तथा अन्य कुछ कठिन अलंकारों का भी अध्ययन-अध्यापन उपयोगी समझा गया। अतः समय-प्रवाह के साथ रहने के विचार से ही पूर्ति कर दी गई। पद्धति सरल-सुबोध यथापूर्व रखी गई है, पर अशास्त्रीय नहीं। इस प्रकार आकार में यह पहले से सवाई हो गई है। उपयोगिता की दृष्टि से भी ऐसा ही अनुपात हो पाया है या नहीं इसका निर्णय-निश्चय मेरी अधिकार-सीमा के बाहर है।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, काशी।
मकर संक्रांति, २०१०

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

(२)

यथास्थान कुछ और त्रुटियाँ दृग्गोचर हुईं और दूर की गईं।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी-१
शारदीय नवरात्र, २०२१

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

24

प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण)

हिंदी के रीतिशास्त्र का विषय विद्यार्थियों को हृदयंगम कराने के लिए कुछ ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी जो क्रमिक विकास के सिद्धांत को ध्यान में रखकर रची गई हों। स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी ने हम लोगों से इस विषय में अपना मंतव्य प्रकट किया था और ऐसी पुस्तकें प्रस्तुत करने की आज्ञा भी दी थी। खेद है, हम लोग गुरुवर की जीवितावस्था में यह कार्य संपन्न न कर सके। आज उक्त प्रकार की पुस्तकों का 'प्रवेश-संस्करण' लेकर हम पाठकों के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं। पुस्तक ऐसे ढंग से लिखी गई है कि यह 'हाईस्कूलों' के विद्यार्थियों को' 'हिंदी-साहित्य-संमेलन' की 'प्रथमा' परीक्षा के परीक्षार्थियों को और वर्नाक्यूलर स्कूलों के मिडिल के लड़कों के लिए पूर्णतया लाभदायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के संकलन में बड़ी सावधानी से काम लिया गया है। सबसे प्रथम इसमें शृंगारिक पद्य एक भी नहीं आने दिया गया है, यहाँ तक कि शृंगार-रस का उदाहरण भी पवित्र प्रेम का ही ढूँढ़कर रखा गया है। उदाहरण सभी सरल, सुबोध और प्रचलित छाँटकर रखे गए हैं। इनका चयन हिंदी के प्रसिद्ध कवियों के ग्रंथों में से किया गया है। साथ ही कठिन शब्दों का

अर्थ पाद-टिप्पनी में दे दिया है; इस कारण विद्यार्थियों को पद्यों का अर्थ समझने में कोई कठिनता न हो सकेगी। विद्यार्थियों की सुविधा का ध्यान रख लक्षण पद्य और गद्य दोनो में दिए गए हैं। पद्य में दिया हुआ लक्षण कंठस्थ करने के लिए है और गद्य में दिया हुआ उस विषय को अच्छी तरह समझ लेने के लिए। भाषा भी सरल ही रखी गई है तथा विषय को कई प्रकार से समझाया गया है। यही नहीं प्रत्येक विषय को समझाने के लिए उदाहरण देकर उनके नीचे लक्षण और उदाहरण का समन्वय भी बड़े सरल ढंग से कर दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि विद्यार्थियों की सब प्रकार की सुविधा पर ध्यान देकर पुस्तक रची गई है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह पुस्तक हिंदी-रीतिशास्त्र में प्रवेश करने में सब प्रकार से उपयुक्त सिद्ध होगी।

इसके संकलन करने में हमें कई ग्रंथों से उदाहरण आदि के लिए सहायता लेनी पड़ी है। हम उन ग्रंथों के रचयिताओं के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

काशी
पौष, १९८७

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
मोहनवल्लभ पंत

विषय-सूची

काव्यांग-कौमुदी

(प्रथम कला)

काव्यांग-कौमुदी

(प्रथम कला)

प्रथम प्रकाश

विषय-प्रवेश

काव्य

'कविता या काव्य किसे कहते हैं' इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। एक आचार्य 'रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करनेवाले शब्द'* को काव्य मानते हैं, तो एक 'रसात्मक अर्थात् हृदय में अद्भुत आनंद देनेवाले वाक्य'† को काव्य कहते हैं। किसी आचार्य का कथन है कि 'जिस रचना को पढ़कर चित्त में लोकोत्तर आनंद हो'‡ वही काव्य है। परिभाषा कोई चाहे किसी प्रकार क्यों न करे तात्पर्य सबका एक ही है। 'काव्य उस भाव-पूर्ण रमणीय रचना को कहते हैं जो मानव-हृदय को प्रभावित कर चित्त में अलौकिक आनंद का संचार करती है'। चित्त को प्रसन्न करना कविता या काव्य का ऐसा गुण है जिसे हम उससे अलग कर ही नहीं सकते। जिस रचना को पढ़कर चित्त खिल न उठे, तबियत फड़क न जाय और हमारे हृदय में उसका कोई प्रभाव न पड़े, वह रचना 'काव्य' नहीं कही जा सकती। काव्य वास्तव में आंतरिक अनुभूतियों का प्रकाशन और बाह्य जगत् के सौंदर्य का चित्रण है। काव्य में उन्हीं बातों को सरस एवम् सुंदर भाषा द्वारा प्रकट किया जाता है जिन्हें हम प्रतिदिन

---

* रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—पंडितराज जगन्नाथ।

† वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—महापात्र विश्वनाथ।

‡ लोकोत्तरानंददाता प्रबंधः काव्यनामभाक्—अंबिकादत्त व्यास।

अपनी आँखों से देखते हैं अथवा जिन्हें हम दैनिक घटनाओं में अनुभव करते हैं। काव्य के पढ़ने से हमारे हृदय की सोई हुई आंतरिक भावनाएँ जागरित हो उठती हैं। यही कारण है कि काव्य मानव-हृदय को प्रभावित एवम् उल्लसित करने में समर्थ होता है। मनुष्य सामाजिक जीव है। समाज से अलग रहना उसे पसंद नहीं। अपने समाज के अन्य व्यक्तियों के कार्य-कलापों, विचारों, राग द्वेष आदि मनोवेगों एवम् अन्य सांसारिक बातों को जानने तथा अपने कार्य-कलापों और भावों को औरों पर प्रकट करने में वह आनंद का अनुभव करता है। यही प्रवृत्ति काव्य का मूल कारण है। इस प्रकार काव्य का विश्लेषण करते हुए उसमें दो बातों की प्रधानता पाई जाती है—(१) मानव-जीवन की सरस एवम् हृदयग्राही व्याख्या और (२) अलौकिक आनंददायकत्व। जहाँ इन दोनो में से एक का भी अभाव हो वहाँ काव्यत्व नहीं आ सकता। जिस काव्य में ये दोनो बातें जितने ही अधिक परिमाण में होंगी वह उतना ही सफल कहा जायगा।

काव्य की परिभाषा में हमने आनंद के लिए 'अलौकिक' या 'लोकोत्तर' विशेषण दिया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि काव्य-पाठक काव्य का अध्ययन करते हुए इस लोक से एकदम दूर हो जाता है अथवा वह यह भूल ही जाता है कि मैं इस संसार का जीव हूँ। अपने या अपने आत्मीयों के दुःख से दुःखी एवम् सुख से सुखी सभी लोग हो सकते हैं; पर जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं है, उनके दुःख-सुख में योग देनेवाले दो-चार सहृदय व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी नहीं हो सकते। काव्यानंदी को उन्हीं दो चार व्यक्तियों में समझना चाहिए। जिस व्यक्ति में इतनी सहृदयता नहीं है कि वह दूसरे के दुःख में करुणार्द्र एवम् सुख में हर्षित हो

सके वह न तो काव्य को समझकर स्वयम् ही उसके आनंद का अनुभव कर सकता है, न दूसरे को ही समझा सकता है। काव्य पढ़कर सहृदय दूसरे के दुःख-सुख से—जिससे अपना कोई संबंध नहीं है—दुःखी और सुखी होते हैं। इसी से काव्य को लोकोत्तर आनंद का देनेवाला कहा गया है। लोक में ऐसा आनंद सभी को नहीं होता, इसी से लौकिक होते हुए भी इसको अलौकिक कहा जाता है।

कविता के द्वारा कोई अपने अनुभवों एवम् विचारों को सरस एवम् चमत्कारिक उक्तियों द्वारा प्रकट कर श्रोताओं एवम् पाठकों के हृदय को प्रभावित करने में समर्थ होता है। कविता के द्वारा साधारण से साधारण और उत्तम से उत्तम भाव अत्यंत सरलता से कहा जा सकता है। इसी से कविता का आदर सभी श्रेणी के लोग करते हैं। यदि कविता प्रसाद-गुण-पूर्ण हो अर्थात् इतनी सरल भाषा में कही गई हो कि सभी की समझ में आ सके तो वह मूर्ख-विद्वान् दोनो को समान रूप से प्रभावित कर सकती है। रामचरितमानस इस बात का समर्थन करने के लिए पर्याप्त है। इस ग्रंथ में काव्योपयोगी सभी गुण वर्तमान हैं। यही कारण है कि पंडित-अपंडित सभी बड़े चाव से इसका पाठ करते हैं, और इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं।

काव्य और साहित्य

काव्य का विवेचन ऊपर कर चुके हैं। यहाँ पर काव्य और साहित्य का संबंध निर्दिष्ट करने के पहले 'साहित्य' का अर्थ जान लेना परम आवश्यक है। 'साहित्य' शब्द के प्राचीन अर्थ से अर्वाचीन अर्थ में बहुत भेद हो गया है। संस्कृत के आचार्यों के मत के अनुसार काव्य वे ग्रंथ हैं जिनमें पूर्वोक्त लक्षण

के अनुसार मानव-जीवन का हृदयग्राही चित्र तथा आनंददायकत्व हो। काव्य के अंतर्गत कविता, नाटक, आख्यायिका आदि सभी आ जाते हैं। रघुवंश, रामायण, अभिज्ञानशाकुंतल, उत्तररामचरित, कादंबरी आदि काव्य-ग्रंथों में गिने जाते हैं। जिन ग्रंथों में काव्य के लक्षणों तथा रस-भाव, अलंकार, छंद, गुण, दोष आदि का विवेचन किया जाता है उन्हें 'साहित्य-ग्रंथ' कहते हैं। साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, छंदप्रभाकर, अलंकारमंजूषा, रसवाटिका आदि साहित्य-ग्रंथ हैं। साहित्यशास्त्र में काव्य के विभिन्न अंगों का विवेचन रहता है। प्रत्येक लक्षण को समझाने के लिए उदाहरणों की आवश्यकता होती है। ये उदाहरण काव्य-ग्रंथों से लिए जाते हैं। संक्षेप में प्राचीनों के मत से काव्य और साहित्य का भेद यह है कि 'लक्षण-ग्रंथों' या 'रीति-ग्रंथों' को 'साहित्य' कहते हैं, 'लक्ष्य' या 'उदाहरण' ग्रंथों को 'काव्य' कहते हैं।

आजकल 'साहित्य' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है, और अँगरेजी के 'लिटरेचर' का समानार्थक होता जा रहा है। जब लोग कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति हिंदी-साहित्य का बड़ा विद्वान् है' तो इसका तात्पर्य यह समझा जाता है कि उक्त व्यक्ति ने हिंदी के रीति एवम् काव्य-ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन किया है। इस प्रकार 'साहित्य' शब्द समस्त रीति-ग्रंथों एवम् काव्य-ग्रंथों के समुदाय का बोधक है। यह अर्थ प्राचीन अर्थ से अधिक व्यापक हो गया है। इसमें लक्षण-ग्रंथ एवम् उदाहरण-ग्रंथ दोनो का समावेश हो जाता है। परंतु काव्य अपने उसी पुराने अर्थ में स्थिर है। इस दृष्टि से काव्य और साहित्य में अंगांगी भाव प्रतीत होता है। काव्य साहित्य में गिना जा सकता है, पर सभी साहित्य-ग्रंथ काव्य-पद को नहीं पा सकते।

साहित्य का आजकाल इससे भी व्यापक अर्थ लिया जाने लगा है। लोगों को प्रायः कहते सुनते हैं कि 'हिंदी में विज्ञान-साहित्य का अभाव है' या 'भिन्न भिन्न विषयों के साहित्य की रचना कर हिंदी की कलेवर-वृद्धि करनी चाहिए' आदि। यहाँ 'साहित्य' शब्द का अर्थ किसी विषय के ग्रंथों का समुदाय है। काव्य, इतिहास, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि में से प्रत्येक विषय के ग्रंथ-समूह को साहित्य मान सकते हैं। इस दृष्टि से काव्य और साहित्य में अंगांगी संबंध है; परंतु काव्य पहले की अपेक्षा साहित्य का मुख्य अंग न रहकर उसके अनेक अंगों में से केवल एक अंग रह गया।

काव्य के भेद

शैली, प्रयोजन और रमणीयता के अनुसार काव्य के भेद तीन प्रकार से कर सकते हैं—

शैली क अनुसार—प्रत्येक भाषा में काव्य-रचना दो प्रकार के वाक्यों द्वारा हो सकती है—(१) गद्य और (२) पद्य। इन्हीं द्विधा वाक्यों के कारण रचना-शैली के अनुसार काव्य की दो श्रेणियाँ की गई हैं— (१) गद्य-काव्य और (२) पद्य-काव्य। काव्य की एक तीसरी श्रेणी भी है जिसमें गद्य एवम् पद्य दोनो का मेल रहता है। उसे 'चंपू-काव्य'* या 'मिश्र-काव्य' कहते हैं। गद्य-काव्य के अंतर्गत उपन्यास, आख्यायिकाएँ, निबंध आदि आते हैं। रामचरितमानस, रामचंद्रचंद्रिका आदि पद्य-काव्य हैं, संस्कृत में नल-चंपू, रामायण-चंपू आदि अनेक चंपू-काव्य हैं, पर हिंदी में इनका अभाव सा है। श्रीजयशंकर 'प्रसाद'

* गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते—साहित्यदर्पण।

ने 'उर्वशी' नामक 'चंपू' लिखा था। श्रीमैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' भी 'चंपू' काव्य ही है।

कुछ लोग काव्य और पद्य को समानार्थक समझ लेते हैं, पर यह भ्रम है। काव्य या कविता में उच्चतम भाव होते हैं, पद्य उसका 'खोल' मात्र है। जिस काव्य में उत्तमोत्तम भाव न हों, केवल खोल ही खोल देख पड़े वह 'पद्य' है। पुराने आचार्यों ने धर्मशास्त्र, गणित, ज्योतिष, वैद्यक आदि के ग्रंथों को भी पद्यबद्ध लिखा है। काव्य के लक्षण आदि भी कंठस्थ करने की सुविधा के कारण छंदोबद्ध ही लिखे गए हैं; पर इन सबको कविता में नहीं गिन सकते, ये पद्य मात्र हैं। काव्य या कविता गद्य में भी कही जा सकती है। पर पद्य में उसका प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। बिना पद्य के काव्य हो ही नहीं सकता, यह बात सर्वथा निर्मूल है। संसार के सभी देशों के साहित्य ने काव्य के लिए पद्य का आश्रय लिया है। इसका कारण यही है कि काव्य और संगीत का बहुत घना संबंध है। गद्य संगीत को सुरक्षित नहीं रख सकता। इसलिए कविता के लिए पद्य आवश्यक सा हो गया है। संगीत के अभाव में कविता का प्रभाव ही कम हो जाता है। इसलिए कविता और पद्य का बड़ा घनिष्ठ संबंध है और रहेगा।

प्रयोजन के अनुसार—काव्य के दो भेद किए जाते हैं—(१) श्रव्य-काव्य और (२) दृश्य-काव्य। जिस काव्य का आनंद या चमत्कार सुनने या पढ़ने से ही प्रतीत हो जाता है, वह 'श्रव्य' कहलाता है। रामचरितमानस, रंगभूमि आदि 'श्रव्य-काव्य' हैं। जिस काव्य का वास्तविक आनंद देखने से ही प्राप्त हो सके वह 'दृश्य' कहलाता है। सत्यहरिश्चंद्र आदि नाटक-ग्रंथ 'दृश्य-काव्य' की श्रेणी में आते हैं। नाटकों का

आनंद केवल पढ़कर या सुनकर भी ले सकते हैं; पर सच्चा आनंद तभी प्राप्त होता है जब हम स्वयम् अपनी आँखों से उनको अभिनय-रूप में देखते हैं। इस दृष्टि से दृश्य-काव्य श्रव्य भी हो सकता है और दृश्य भी; पर श्रव्य-काव्य दृश्य की सीमा में नहीं आ सकता। संस्कृत में दृश्य-काव्य का दूसरा नाम 'रूपक' भी है। 'नाटक' रूपक के भेदों * में से एक है संस्कृत में छोटे-बड़े के विचार से रूपक और उपरूपक दो प्रकार होते हैं। रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेद हैं। हिंदी में दृश्य-काव्य मात्र (संस्कृत के रूपक और उपरूपक सब) के लिए साधारणतया 'नाटक' शब्द का ही व्यवहार होता है। श्रव्य-काव्य केवल गद्य अथवा केवल पद्य अथवा एक साथ दोनो में लिखा जा सकता है। सुभीते के लिए शैली के अनुसार किए गए भेद श्रव्य-काव्य के ही भेद हैं। नाटकों में यद्यपि गद्य और पद्य का संमिश्रण रहता है तथापि उनको 'चंपू' नहीं कह सकते; क्योंकि उनका वास्तविक चमत्कार अभिनय से ज्ञात होता है।

श्रव्य-काव्य दो प्रकार का होता है—(१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य में आदि से अंत तक एक एक अध्याय, एक एक प्रसंग, एक एक छंद प्रबंध के आश्रित रहता है। प्रबंध से भिन्न उनका कोई महत्त्व ही नहीं, जैसे—रामायण। मुक्तक काव्य ठीक इसके विपरीत है। जहाँ एक पद्य का अपने पहले या पीछे आनेवाले अन्य किसी भी पद्य से कोई संबंध न हो, अपने अपने विषय को प्रकट करने में प्रत्येक पद्य पृथक् पृथक् पर्याप्त हो, ऐसे पद्य-काव्य को 'मुक्तक' कहते हैं; जैसे—बिहारी-सतसई के दोहे।

---

* रूपक के दस भेद ये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग।

प्रबंध-काव्य दो प्रकार के होते हैं—(१) महाकाव्य और (२) खंड-काव्य। महाकाव्य में जीवन के विस्तृत काल की घटनाओं का चित्रण रहता है; परंतु खंड-काव्य में जीवन की किसी एक घटना का परिमित चित्रण होता है। रामचरितमानस महाकाव्य है। इसमें मानव-जीवन की अनेक घटनाओं, अनेक चित्त-वृत्तियों तथा अनेक समाजों का विस्तृत वर्णन है। यदि कोई रामायण की केवल एक घटना को लेकर 'धनुष-यज्ञ' या 'मेघनाद-वध' नामक काव्य रच डाले तो उन्हें 'खंड-काव्य' कहेंगे। कृष्ण-कथा के अंश मात्र को आधार बनाकर लिखे गए 'सुदामाचरित' और 'जयद्रथवध' खंड-काव्य हैं।

रमणीयता के अनुसार—काव्य के तीन भेद होते हैं। रमणीयता शब्द और उसके अर्थ से संबंध रखती है; अतः इन भेदों के बारे में कुछ कहने के पूर्व 'शब्द-शक्ति' का भी संक्षिप्त विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

शब्द-शक्ति

शब्दों के अर्थ तीन प्रकार की शक्तियों से जाने जाते हैं—(१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना से।

अभिधा—जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया का संकेत देने के लिए कुछ शब्द नियत कर लिए गए हैं। यदि पूर्वसंचित ज्ञान अथवा शब्दकोश के अनुसार शब्द के सुनने मात्र से शब्द का वही अर्थ विदित होता हो जिसे हम जानते हैं तो वह 'वाच्यार्थ' कहलाएगा। इस अर्थ को बतलानेवाले शब्द को 'वाचक' तथा जिस शब्द शक्ति से इस अर्थ का बोध होता है उसे 'अभिधा-शक्ति' कहते हैं। 'लड़का घोड़े पर सवार है' इस वाक्य में प्रत्येक शब्द अपने साक्षात् सांकेतिक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

लक्षणा---यदि शब्द का मुख्य अर्थ अर्थात् अभिधा-शक्ति द्वारा प्राप्त वाच्यार्थ न लेकर उसी से संबद्ध किसी अन्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है तो उसे 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं। जिस शब्द के द्वारा इस अर्थ का बोध होता है उसे 'लक्षक' कहते हैं और जिस शक्ति से इस लक्ष्यार्थ का बोध होता है उसे 'लक्षणा' कहते हैं। कोई नौकर रात-दिन इसलिए रोता है कि 'मेरी रोटी छिन गई'। कोई इज्जतदार पछताता है कि 'हाय! मेरे मुख में कालिख पुत गई'। माँ पुत्री को आशीर्वाद देती है कि 'तेरी माँग का सिंदूर अचल रहे'। जरा ध्यान से समझिए, इन वाक्यों का क्या वही अर्थ है जो आप अभिधा-शक्ति के बल से पहले से जानते हैं। 'रोटी' छिन गई तो रातदिन रोना-धोना क्यों? 'रोटी' का अर्थ अभिधा-शक्ति के अनुसार आटे से बना हुआ एक प्रकार का भोज्य पदार्थ होता है; पर इसका अर्थ यह न होकर 'जीविका' है। यह अर्थ वाच्य के अति संनिकट है। एक रोटी का छिन जाना कोई चिंता की बात नहीं है; परंतु जीविका का छिन जाना वास्तव में रोने का कारण है, क्योंकि उसके छिन जाने से तब तक रोटी न मिल सकेगी जब तक वह फिर प्राप्त न हो जाय। मुख में कालिख पुतने का यहाँ पर यह अर्थ नहीं है कि सचमुच उसके मुख में स्याही पोत दी गई है। कालिख पुतने का तात्पर्य है 'कलंकित होना'। यह लक्ष्यार्थ अपने वाच्यार्थ से ही संबद्ध है; क्योंकि कालिख पुतने से कोई मुँह दिखलाने में लज्जा या संकोच का अनुभव करता है। कलंकित होने पर भी ऐसा होता है। नहाने-धोने में माँग का सिंदूर धुलता-पुछता रहता है। सिंदूर के लिए आशीर्वाद! दुकानदार को पैसा दीजिए सिंदूर लीजिए। पर माँग का सिंदूर सौभाग्यवती या सधवा का लक्षण है। अतः यहाँ भी इसका वाच्यार्थ न लेकर इसी से संबंध रखनेवाला यह

'लक्ष्यार्थ' लिया जाता है कि 'तू सदा सौभाग्यवती रहे'। इन सभी उदाहरणों में वाच्यार्थ का ग्रहण न कर उसी से संबद्ध अन्य अर्थों का ग्रहण किया गया है, यही लक्ष्यार्थ है।

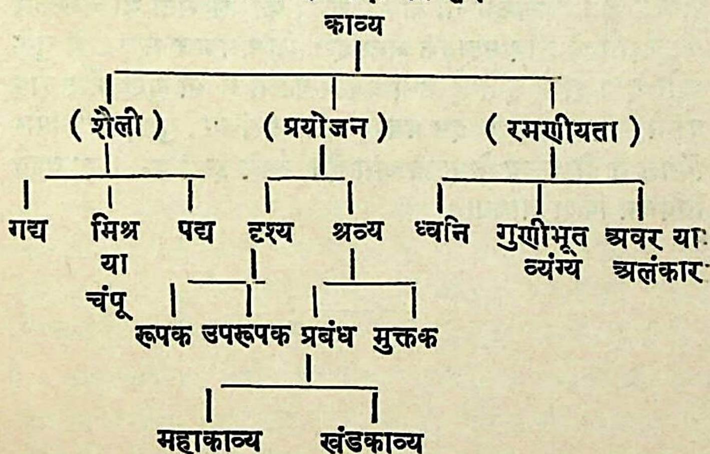
व्यंजना—यदि शब्दों के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों में से कोई अर्थ न लेकर और ही कोई अर्थ लिया जाय तो वह 'व्यंग्यार्थ' कहलाता है। इस अर्थ के द्योतक शब्द को 'व्यंजक' कहते हैं और जिस शक्ति से इसका बोध होता है उसे 'व्यंजना' कहते हैं। कोई व्यक्ति सबेरे बहुत देर करके उठता है तो उससे कहते हैं—'कहो, सूरज अभी निकला है न!' किसी मूर्खतापूर्ण काम करनेवाले के प्रति मुख से अचानक निकल पड़ता है—'वाह! आपकी बुद्धिमत्ता का क्या कहना!'। इन उदाहरणों में वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से ठीक मतलब नहीं निकलता; परंतु भाव ठीक ठीक समझ में आ जाता है।

लखि हर गन बोले मुसकाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई।
रीझिहि राजकुँवरि छवि देखी। इन्हहिं बरिहि हरि जानि बिसेखी।

अभिधा से इसका सीधा-सादा अर्थ यह है—'नारद को देखकर महादेव के गण मुसकुराते हुए बोले कि विष्णु ने इनको अच्छी सुंदरता दी है, राजकुमारी इनकी शोभा देखकर प्रसन्न होगी और इनको हरि (विष्णु) ही समझकर वर लेगी।' परंतु आशय इसके विपरीत है। हरगणों के कहने का वास्तविक तात्पर्य यह है कि विष्णु ने इनको कुरूप बना दिया है, राजकुमारी इनका वेश देखकर नाक-भौं सिकोड़ेगी और इनको हरि (वानर) समझकर इनकी ओर ताकेगी भी नहीं। यहाँ 'सुंदरता' का 'कुरूपता', 'रीझिहि' का 'खीझिहि' और 'बरिहि' का 'न बरिहि' अर्थ ठीक वाच्यार्थ के विपरीत है। यह व्यंग्यार्थ है।

इसी व्यंग्यार्थ के न्यूनाधिक्य और अभाव के कारण काव्य के तीन भेद होते हैं—(१) ध्वनि-काव्य (२) गुणीभूत-व्यंग्य-काव्य और (३) अवर या चित्र-काव्य। जिस काव्य में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अत्यधिक चमत्कार हो उसे 'ध्वनि-काव्य' कहते हैं। जिसमें ध्वनि हो वही काव्य उत्तम है। अच्छे अच्छे कवियों और लेखकों की रचनाओं में विशेष आनंद का कारण ध्वनि ही है। गुणीभूत-व्यंग्य में या तो व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ की अपेक्षा कम चमत्कार रहता है अथवा दोनो में सम चमत्कार रहता है। व्यंग्यार्थ गौण (अप्रधान) होने के कारण 'गुणीभूत-व्यंग्य-काव्य' मध्यम-काव्य कहा जाता है। जिस काव्य में केवल वाच्यार्थ ही में चमत्कार पाया जाय और व्यंग्य का एकदम अभाव हो वह 'चित्र या अवर-काव्य' है। 'चित्र' का अर्थ यहाँ 'अलंकार' है। अलंकारों से लदी हुई, पर व्यंग्य से हीन कविता निम्न श्रेणी की होती है।

काव्य के भेदों का वृत्त



काव्य के अंग

यहाँ तक काव्य और उसके भेदों का संक्षिप्त परिचय दे चुके। अब काव्य के अंगों का विचार करना है।

काव्य का प्रधान गुण है मानव-जीवन का सजीव और हृदय-स्पर्शी चित्र चित्रित करना और अनुभूतियों का प्रकाशन करना। ऐसा चित्र और ऐसी अनुभूतियाँ जो देखने-सुनने से देखने-सुनने-वाले के हृदय को प्रभावित कर दें। साहित्य में इस प्रभाव का नाम 'रस' है। यही 'रस' काव्य की 'आत्मा' है। 'भाषा' उसका 'शरीर' है। जिस प्रकार आत्मा-विहीन शरीर निर्जीव होता है उसी प्रकार उक्त चमत्कार-विहीन कविता नीरस होती है और काव्य-पद पाने योग्य नहीं होती। 'पिंगल या छंदशास्त्र' उसका बाह्य आवरण है। 'अलंकार' उसका 'शृंगार' है। सहज सुंदर व्यक्ति शृंगार किए बिना भी सुंदर कहा जा सकता है। उसी प्रकार अलंकार-विहीन सुंदर कविता भी सरस कही जा सकती है। अलंकार तो केवल काव्य की सरसता या चमत्कार को बढ़ाने के लिए सहायक मात्र हैं। जिस प्रकार मनुष्य में गुण और दोष दोनो होते हैं उसी प्रकार काव्य में भी गुण और दोष दोनो पाए जाते हैं। इस प्रकार रस, अलंकार, गुण, दोष और पिंगल ये ही काव्य के मुख्य अंग हैं। आगे इन्हीं का थोड़ा बहुत विवेचन किया जायगा।

द्वितीय प्रकाश

रस-परिचय

'रस' क्या है

काव्य के विवेचन में हम कह चुके हैं कि रस काव्य की आत्मा है। रस का वास्तविक अर्थ होता है—'स्वाद'। भोजन करते समय लोग प्रायः कहा करते हैं कि 'वाह, कैसा सरस भोजन है'। यहाँ रस से तात्पर्य कटु, अम्ल, तिक्त, लवण, कषाय, और मधुर इन छह प्रकार के स्वादों से है, जिनका अनुभव हम जिह्वा से करते हैं। यद्यपि काव्य जिह्वा से चखने-योग्य पदार्थ नहीं है तथापि लोगों को कहते सुना जाता है कि 'अमुक काव्य बहुत ही सरस है', 'अमुक कथा तो एकदम नीरस है', 'अमुक छंद से रस टपका पड़ता है' आदि। यहाँ रस से तात्पर्य उस अलौकिक आनंद से है जो काव्य के पढ़ने से पाठक के हृदय में उत्पन्न होता है। यदि काव्य के प्रेमपूर्ण प्रसंग को पढ़कर आपका मन प्रेम से भर गया, आपके चित्त में आनंद की तरंगें उठने लगीं; वीरतापूर्ण वर्णन पढ़कर आपका मन फड़क उठा, आपके हृदय में उत्साह भर गया; किसी की करुण कथा सुनकर आपका हृदय शोक से भर गया; हास्य का प्रसंग पढ़कर आपकी बत्तीसी खिल उठी; सारांश यह कि जैसा प्रसंग आपने पढ़ा वैसा ही भाव आपके मन में भर गया तो समझ लीजिए कि आपको काव्य का आनंद मिल गया। आप तुरंत कह देंगे कि कैसा सुंदर सरस काव्य है!

अब प्रश्न यह उठता है कि इस आनंद का कारण क्या है? वास्तव में जैसा हम पहले कह चुके हैं, 'काव्य मानव-जीवन को अनुभूतियों या भावों का प्रकाशन है'। काव्य में जिन भावों का

वर्णन रहता है, यदि उनकी वर्णन-शैली मनोहर हो तो पाठक के मन में भी वे ही भाव या मनोविकार जागरित हो जाते हैं और उसको यह प्रतीत होने लगता है कि मैं स्वयम् उस मनोविकार का अनुभव कर रहा हूँ। इस आत्मीयता से उसके मन में विशेष आनंद उत्पन्न होता है। जो बात काव्य के पाठकों के बारे में कही गई है वही बात नाटक के दर्शकों के संबंध में भी कही जा सकती है; प्रत्युत काव्य-पाठकों की अपेक्षा अभिनय-रूप में प्रत्यक्ष देखने के कारण दर्शकों के मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। रंगमंच पर जिस समय किसी भाव का प्रदर्शन किया जाता है, दर्शक के मन में तत्काल वैसा ही भाव जागरित हो जाता है, जिससे उसको अकथनीय आनंद मिलता है। इसी अनिर्वचनीय आनंद का नाम साहित्यशास्त्र में 'रस' है।

रस-सामग्री

काव्य पढ़ने या अभिनय देखने से मन में जो भाव उठते हैं वे कहीं बाहर से नहीं आते। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रेम, शोक, क्रोध, भय आदि कुछ भाव सदा अप्रकट रूप से वर्तमान रहते हैं। कारण विशेष से वे सुप्त भाव तुरंत जागरित हो जाते हैं। इन भावों को 'स्थायी भाव' कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने ऐसे भाव नौ ही माने हैं, जिन्हें हम 'स्थायी' कह सकते हैं। ये ९ स्थायी भाव हैं—(१) रति (प्रेम), (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) घृणा, (८) आश्चर्य और (९) निर्वेद (शांति)। जिन कारणों से ये भाव हमारे हृदय में जागरित होते हैं उनको 'विभाव' कहते हैं। ये विभाव, अर्थात् भाव या रस उत्पन्न करने के कारण, दो प्रकार के होते हैं—(१) आलंबन-विभाव और (२) उद्दीपन-विभाव। जिनको आधार बनाकर भाव

उत्पन्न होते हैं वे तो 'आलंबन-विभाव' कहलाते हैं और जिनके सहारे वे उत्पन्न हुए भाव विशेष रूप से बढ़ जाते हैं उन्हें 'उद्दीपन-विभाव' कहते हैं। जब किसी कारण कोई भाव हृदय में जागरित हो जाता है तो उसके फलस्वरूप मनुष्य अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता है और उसकी ओर देखने से यह बात साफ जान पड़ती है कि उसके मन में अमुक भाव का उदय हुआ है। हँसी का वर्णन पढ़कर हमारी बत्तीसी खिल उठती है; किसी का आश्चर्यजनक काम पढ़-सुनकर हम अवाक् रह जाते हैं; कोई शोक समाचार जानकर हमारी आँखों से आँसू टपकने लगते हैं; डर के मारे हमारा शरीर काँपने लगता है, रोएँ खड़े हो जाते हैं, घिग्घी बँध जाती है, मुख से वचन नहीं निकलते; इन सब चेष्टाओं और दशाओं को 'अनुभाव' कहते हैं।

कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जो स्थायी नहीं होते; प्रत्युत उनके सहायक होते हैं। स्थायी भाव तो परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त होने पर 'रस' अर्थात् 'अनिर्वचनीय आनंद' हो जाता है। प्रत्येक स्थायी भाव रस उत्पन्न करता है; परंतु ये सहकारी भाव में आते हैं और स्थायी भाव को पुष्ट कर विलीन हो जाते हैं; इस प्रकार के भावों को 'संचारी भाव' या 'व्यभिचारी भाव' कहते हैं। एक उदाहरण द्वारा इस विषय को और स्पष्ट कर देना उचित होगा।

मान लीजिए, किसी व्यक्ति ने आपको गाली दी। आपको तुरंत क्रोध आ जायगा; यह क्रोध ही स्थायी भाव है जो आपके हृदय में वर्तमान था और कारण पाते ही जागरित हो गया। इस क्रोध के कारण दो हैं—एक तो वह व्यक्ति जिसने गाली दी, दूसरे उसके दुर्वचन। वह व्यक्ति 'आलंबन-विभाव' कहलाएगा, क्योंकि क्रोध आपको उसी पर होता है। ज्यों ज्यों वह गाली देता जाता है, मुँह बनाकर आपको चिढ़ाता जाता है, आपका क्रोध

भी बढ़ता जाता है; अतएव उसका गाली देना, मुँह चिढ़ाना आदि 'उद्दीपन विभाव' हैं। क्रोध आने पर आपकी भौंहें चढ़ जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, मुख तमतमा उठता है। ये सब 'अनुभाव' हैं। यदि उक्त गाली देनेवाले ने पहले भी आपका कोई अपकार किया हो और उसका भी स्मरण आपको हो आए, तो आपका क्रोध और भी बढ़ जायगा। यह 'स्मरण' संचारी भाव है, जो केवल थोड़ी देर के लिए आकर आपके क्रोध को भड़काकर स्वयम् विलीन हो गया। यह भाव क्रोध की तरह आपके मन में स्थायी नहीं रह सका, क्रोध की सहायता भर कर गया। अगर पिछली बुराई का ध्यान आपको न आता तो कदाचित् आपका क्रोध बढ़ता न, अतएव यह सहकारी भाव ही 'संचारी भाव' हुआ।

इस प्रकार रस उत्पन्न करने के चार साधन हैं—

स्थायी भाव—अर्थात् वे भाव जो स्थायी रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वर्तमान रहते हैं।

विभाव—जिनके प्रति भाव होता है या जिनसे बढ़ता है।

अनुभाव—भाव को बतलानेवाली चेष्टाएँ।

संचारी भाव—स्थायी भाव की सहायता करनेवाले, उसे बढ़ा देनेवाले अस्थिर भाव। इन संचारी भावों की गिनती करके इनकी संख्या ३३ मानी गई है। इनके अतिरिक्त भी अन्य संचारी होते हैं। अधिकतर ये ही घूम-फिरकर सर्वत्र आते हैं। इन तैंतीसो के नाम ये हैं—

(१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शंका, (४) असूया, (५) श्रम, (६) मद, (७) धृति, (८) आलस्य, (९) विषाद, (१०) मति,

(११) चिंता, (१२) मोह, (१३) स्वप्न, (१४) विबोध, (१५) स्मृति, (१६) अमर्ष, (१७) गर्व, (१८) उत्सुकता, (१९) अवहित्था, (२०) दीनता, (२१) हर्ष, (२२) व्रीड़ा, (२३) उग्रता, (२४) निद्रा, (२५) व्याधि, (२६) मरण, (२७) अपस्मार, (२८) आवेग, (२९) त्रास, (३०) उन्माद, (३१) जड़ता, (३२) चपलता और (३३) वितर्क।

अब हम रस की व्याख्या यों करते हैं—'जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सहायता से स्थायी भाव पुष्ट होकर परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है अर्थात् पाठक या दर्शक के मन को प्रभावित करता है तब उसे रस कहते हैं।'

रस-भेद

ऊपर कहे हुए नौ स्थायी भावों से क्रमशः-(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) अद्भुत और (९) शांत ये नौ रस होते हैं। रसों के भेदों के विषय में आचार्यों में मत-भेद है; परंतु उक्त नौ रस बहुमत से मान्य हैं। यहाँ अत्यंत संक्षेप में क्रमशः नवों रसों का परिचय-मात्र दिया जाता है।

शृंगार रस

शृंगार रस में स्त्री-पुरुष-विषयक प्रेम का वर्णन रहता है। इस प्रेम को साहित्यिक लोग 'रति' कहते हैं। यही 'रति' इस रस का स्थायी भाव है। यदि नायक के मन में नायिका को देखकर प्रेम उत्पन्न हो तो नायिका आलंबन विभाव मानी जायगी और यदि नायिका के मन में नायक के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा तो नायक आलंबन होगा। वसंत ऋतु, सुंदर उपवन,

खिली हुई चाँदनी, एकांत, रमणीय स्थल इत्यादि इस प्रेम को बढ़ाते हैं। अतएव ये इस रस के उद्दीपन विभाव हुए। एक-दूसरे की चेष्टा, सुंदरता, गुण आदि भी परस्पर प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं। जब इन विभावों द्वारा रति वृद्धि को प्राप्त होती है तब नायक या नायिका का मुख प्रसन्न हो जाता है. आँखें खिल उठती हैं, ओठ मुसकराने लगते हैं, वे परस्पर हास विनोद करने लगते हैं, एक-दूसरे की ओर प्रेम-भरी निगाह से टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। ये सब शृंगार रस के अनुभाव हैं। हर्ष, उत्सुकता चंचलता, लज्जा आदि इस रस के संचारी भाव हैं। प्रेम-पात्र से मिलने की व्यग्रता, मिलने पर हर्ष, उसके दर्शन की चेष्टा में इधर उधर झाँकना आदि इस रस के सहायक होते हैं। तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथों में राम और सीता के पवित्र प्रेम का बड़ा ही सुंदर चित्र खींचा है।

उदाहरण—(कवित्त)

दोऊ जने दोऊ को अनूप रूप[1] निरखत
पावत कहूँ न छबिसागर को छोर[2] हैं।
चिंतामनि केलि की कलानि के विलासनि[3] सों
दोऊ जने दोउन के चित्तनि के चोर हैं।
दोऊ जने मंद मुसकानि सुधा बरषत
दोऊ जने छके मोद मद[4] दुहूँ ओर हैं।
सीताजू के नैन रामचंद के चकोर भए
राम नैन सीता मुखचंद के चकोर हैं॥

---

१ अनुपम सौंदर्य। २ किनारा। ३ शृंगार की अनेक चेष्टाएँ। ४ प्रसन्नता रूपी मद से छक गए हैं।

राम और सीता में जो पारस्परिक प्रेम-भाव है वही 'रति स्थायी' है। राम और सीता एक दूसरे के आलंबन विभाव हैं। एकांत स्थल, सुंदरता आदि उद्दीपन विभाव हैं। मुसकराना और टकटकी लगाकर एक दूसरे को देखना अनुभाव हैं। हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण शृंगार रस है। शृंगार के दो भेद होते हैं—संयोग और वियोग। जब प्रिय और प्रेमी पास रहते हैं, उनके मन एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं तो संयोग होता है।

ऊपर का उदाहरण संयोग का है। जब दोनो दूर हो जाते हैं या मन एक दूसरे के अनुकूल नहीं होता तो वियोग हाता है। सीता के हरण पर रामचंद्रजी ने विलाप किया था, सोताजी रामचंद्रजी के लिए अशोक-वाटिका में रोती रहीं यह उनका वियोग है।

हास्य रस

इस रस का स्थायी भाव है 'हास' (हँसी)। लोगों की विचित्र वेश-रचना, विनोद-पूर्ण आलाप, विलक्षण आकृति, विपरीत अलंकार या वस्त्रधारण, अन्य लोगों की हँसी इत्यादि, हँसी उत्पन्न करनेवाले कारण, इस रस के विभाव हैं। जिस व्यक्ति की विचित्र वेश-भूषा, विरूप चेष्टाएँ आदि देखकर या जिसका विनोद-पूर्ण आलाप सुनकर हँसी आती है वह आलंबन विभाव है, उसकी चेष्टाएँ, आलाप आदि उद्दीपन विभाव हैं। हँसी उत्पन्न होने पर मुख प्रसन्न हो जाता है, बत्तीसी खिल उठती है, कभी कभी हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। ये सब इसके अनुभाव हैं। उस समय जो हर्ष होता है, हँसते हँसते जो श्रम होता है, अथवा चपलता आदि और भी जो भाव होते हैं वे सब संचारी हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

हँसि हँसि भजैं देखि दूलह दिगंबर[१] को
पाहुनी[२] जे आवैं हिमाचल[३] के उछाह[४] में।
कहै पद्माकर सु काहू सों कहै को कहा
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह[५] में।
मगन भएई[६] हसैं नगन महेस ठाढ़े
और हँसैं वेऊ हँसि हँसि कै उमाह[७] में।
सीस पर गंगा हँसैं भुजनि भुजंगा[८] हँसैं
हास ही को दंगा[९] भयो नंगा के वियाह में॥

महादेव को नग्न देखकर लोगों का हँसना हास स्थायी भाव है। महादेव आलंबन-विभाव हैं। उनका हँसना तथा गंगा और भुजंगों का हँसना उद्दीपन विभाव हैं। लोगों का हँस हँस कर भागना, लोट-पोट हो जाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, लोगों के महादेव का स्वरूप देखने के लिए दौड़ पड़ने में चपलता, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण हास्यरस है।

करुण रस

अपने प्रिय व्यक्ति के नाश अथवा क्लेश आदि को देखकर मनुष्य के चित्त में शोक उमड़ आता है। उसके मृत शरीर अथवा उसकी वस्तुओं को देखकर और उसके गुणों एवम् पूर्व-क्रिया-कलापों का स्मरण कर करके वह शोक और भी बढ़ जाता है। शोक में मनुष्य रोने लगता है, दीर्घ, निःश्वास लेता है, छाती

१ नग्न महादेव। २ अतिथि स्त्रियाँ। ३ पार्वती के पिता। ४ उत्सव। ५ रास्ता। ६ आनंदित होकर। ७ उत्साह, चाव। ८ बाँहों पर सर्प हँसते हैं। ९ उपद्रव।

पीटता है, पछाड़ खाता है, रोते रोते गला सूख जाता है, कभी कभी वह मूर्च्छित हो जाता है, कभी उन्मत्त होकर प्रलाप करने लगता है। ये सब अनुभाव हैं। इस प्रकार शोक स्थायी भाव विभाव, अनुभाव आदि की सहायता से परिपक्वावस्था को प्राप्त हो करुण रस हो जाता है। प्रिय व्यक्ति इसका आलंबन विभाव, उसकी वस्तुओं के दर्शन, उसके गुणों का स्मरण आदि उद्दीपन विभाव हैं। रोना, आह भरना आदि अनुभाव और मूर्च्छा, उन्माद, प्रलाप आदि इसके संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

मात को मोह न द्रोह बिमात[1] को सोच न तात[2] के गात दहे[3] को।
प्रान को छोभ[4] न बंधु बिछोभ[5] न राज को लोभ न मोद रहे को।
एते पै नेक न मानत *श्रीपति* एते मैं सीय बियोग सहे को।
तारन भूमि मैं राम कह्यो मोहिं सोच बिभीपन भूप कहे को॥

लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर रामचंद्र विलाप कर रहे हैं। लक्ष्मण के प्रति यह शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलंबन विभाव हैं। उनकी वीरता, गुण आदि उद्दीपन विभाव हैं, क्योंकि रामचंद्र कहते हैं कि मैंने विभीषण को 'भूप' कह दिया है। लक्ष्मण के न रहने पर रावण को मारकर इसे सिंहासनारूढ़ करा सकने में मैं अकेला असमर्थ हूँ। रामचंद्र का विलाप करना अनुभाव है। इस शोक में भी बिभीषण को राज्यारूढ़ कराने का ध्यान रहने से मति, धृति और इनके अतिरिक्त वितर्क, स्मृति, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

---

१ (विमाता) सौतेली माता। २ पिता (दशरथ)। ३ शरीर के जलाने का, उनके स्वर्गवासी हो जाने का। ४ दुःख, खेद। ५ भाई का वियोग।

रौद्र रस

क्रोध नामक स्थायी भाव की परिपूर्णावस्था को रौद्र रस कहते हैं। जिस व्यक्ति पर क्रोध आता है वह व्यक्ति या प्रतिपक्षी इसका आलंबन विभाव है। अपने शत्रु या प्रतिपक्षी द्वारा अपमानित होने, उसके मुँह से अपने गुरुजनों की निंदा सुनने, उसको प्रत्यक्ष देखने, उसके चिढ़ाने इत्यादि कारणों से क्रोध होता है। क्रोध होने पर यदि वह जिसके प्रति क्रोध हुआ है फिर कुछ वैसा ही कार्य करे तो क्रोध बढ़ता है। यही उद्दीपन विभाव है। क्रोध करनेवाले की आँखें लाल हो जाती हैं, भौंहें चढ़ जाती हैं, वह ओठ चबाने लगता है, मूँछों पर ताव देता है, अपनी बाँहें समेटकर शत्रु को मारने को तत्पर होता है; ये सब अनुभाव हैं। शत्रु के पूर्वकृत अपकारों का स्मरण कर क्रोध और बढ़ जाता है; और चंचलता, उद्दंडता, उग्रता आदि अनेक मनोविकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार की धार में बारन[1] बाजि[2] सरत्थहिं[3]।
बान की बायु उड़ाय कै लच्छन[4] लच्छ[5] करौं अरिहा[6] समरत्थहिं।
रामहिं बान[7] समेत पठै वन सोक के भार[8] में भूजों भरत्थहिं[9]।
जौ धनु हाथ लियो रघुनाथ[10] तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥

शिवधनु-भंग सुनकर परशुराम राम पर क्रुद्ध हो रहे हैं। उनका क्रोध स्थायी भाव है। राम आलंबन विभाव हैं। परशुराम

---

१ हाथी। २ घोड़ा। ३ रथ-समेत। ४ लक्ष्मण। ५ (लक्ष्य) निशाना। ६ शत्रुघ्न। ७ स्त्री (सीता)। ८ भाड़, भरसाँई। ९ भरत को। १० यदि मुझसे लड़ने को राम धनुष हाथ में ले।

के गुरु शिव का धनुष तोड़कर गुरु का अपमान करना और इतने पर भी शान के साथ राजपुत्री को व्याह कर लेते हुए जाना उद्दीपन विभाव है। परशुराम का 'रघुवंश का नाश कर डालूँगा' आदि कहना अनुभाव है। परशुराम के उक्त कथन में गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण रौद्र रस है।

वीर रस

जब कोई अपने प्रतिद्वंद्वी से भिड़ने एवम् उसे पराजित करने जाता है तो मन में विशेष स्फूर्ति रहती है, उमंग भर जाती है। यदि यह उत्साह न हो तो रण में कोई वीरतापूर्ण काम नहीं कर सकता। यही उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है। जिस पर विजय प्राप्त करनी होती है वही इसमें आलंबन विभाव है। शत्रु या प्रतिद्वंद्वी का उत्कर्ष देखकर, ललकार सुनकर युद्ध हो तो मारू बाजा, सैन्य आदि देख सुनकर उमंग बढ़ती है। ये सब उद्दीपन विभाव हैं। उत्साह हो जाने पर भुजाएँ फड़कने लगती हैं, लड़ने-भिड़ने की तैयारी की जाती है, अपने पक्षवालों को व्याख्यान देकर उत्साहित करते हैं, अपने अस्त्र-शस्त्र उठाकर दूसरे पक्ष पर आक्रमण करते हैं; ये सब अनुभाव हैं। उस समय उग्रता, आवेग, गर्व, अमर्ष आदि जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब संचारी हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

डहडहे डंकन के सबद[1] निसंक होत
बहबही[2] सत्रुन की सेना जोर सरकी[3]।
हरिकेस सुभट घटान[4] की उमंड उत
चंपति को नंद[5] कोप्यो उमँग समर[6] की।

---

१ डंकों की घोर ध्वनि। २ खोटी। ३ चली। ४ वीरों का समूह। ५ चंपति के पुत्र (छत्रसाल)। ६ युद्ध।

हाथिन की मंड[1] मारू राग की उमंड[2] त्यों त्यों
लाली झलकति मुख छत्रसाल बर की।
फरकि फरकि उठै बाँहैं अस्त्र बाहिबे कौ[3]
करकि करकि उठैं करी बखतर[4] की॥

शत्रु की सेना देखकर छत्रसाल के उमँगने में उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु आलंबन है। डंकों का शब्द, सेना का चलना, वीरों का तैयार होना, हाथियों का मँडराना, मारू का बजना आदि उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध के लिए उमँगना, मुख में ललाई छा जाना, हथियार चलाने के लिए भुजाओं का फड़कना, हर्ष से शरीर के फूल उठने से कवच के बंधनों का टूट जाना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष,उत्सुकता, हर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

भयानक रस

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। हिंसक जंतु, निर्जन प्रदेश, शून्य खँडहर, श्मशान आदि के कारण चित्त में भय का संचार हो जाता है; अतः ये आलंबन विभाव हुए। निर्जन स्थलों की भयंकरता, हिंसक जंतुओं के घोर शब्द आदि के द्वारा भय और भी बढ़ जाता है। ये उद्दीपन विभाव हैं। डर के मारे शरीर में कँपकँपी हो जाती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, घिग्घी बँध जाती है, मुख से वचन नहीं निकलते; ये चेष्टाएँ अनुभाव हैं। ऐसे प्रसंग पर चिंता, मूर्च्छा, उक्त स्थलों के संबंध में सुनी हुई भूत-प्रेतादि की घटना का स्मरण; ये सब संचारी भाव हैं।

---

१ मँडराना। २ मारू राग की ध्वनि का फैलना। ३ हथियार चलाने के लिए। ४ जिरह-बख्तर के बंधन टूट जाते हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

रानी अकुलानी सब डाढ़त[1] परानी जाहिं[2]
सकैं न बिलोकि बेष केसरी किसोर[3] को।
मींजि मींजि हाथ धुनि माथ दसमाथ[4] तिय
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार[5] को।
सब असबाब डाढ़ा[6] मैं न काढ़ो[7] तैं न काढ़ो
जिय की परी सँभारै सहन भँडार[8] को।
खीझति मँदोवै[9] सविषाद देखि मेघनाद
बयो लुनियत[10] सब याही डाढ़ीजार[11] को॥

लंकादहन के समय का यह दृश्य है। लंका के जलने पर मंदोदरी आदि के घबराने में भय स्थायी भाव है। हनूमान् आलंबन विभाव हैं। हनूमान् का विकराल वेश, घर, असबाब आदि का जलना उद्दीपन विभाव हैं। घबराकर भागना, हाथ मींजना, माथा पीटना, जलते हुए असबाब को देखकर एक-दूसरे से उसे बाहर न करने के लिए बिगड़ना-झगड़ना, खीझना आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिंता, स्मृति, त्रास आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण भयानक रस है।

वीभत्स रस

जुगुप्सा (घृणा) नामक स्थायी भाव की परिपूर्णावस्था को वीभत्स रस कहते हैं। रक्त, मांस, अस्थि आदि घृणित पदार्थ इसके आलंबन विभाव हैं। उनको बारबार देखने और उनका

१ जलते ही। २ भागी जाती हैं। ३ हनूमान्। ४ रावण। ५ घर से तिल-भर सामान भी बाहर न हो सका। ६ जल गया है। ७ निकाला। ८ खजाना। ९ मंदोदरी। १० इसी का बोया काट रही हूँ, इसी के कर्मों का फल है कि लंका जली। ११ दाढ़ीजार अर्थात् दुष्ट (बेशऊर)।

वर्णन सुनने से घृणा बढ़ जाती है; अतएव ये उद्दीपन विभाव हैं। घृणित पदार्थ को देखकर लोग मुँह बिगाड़ते हैं, थूकने लगते हैं, नाक-भौं सिकोड़ते हैं; ये सब इसके अनुभाव हैं। मोह, मूर्च्छा, स्मृति आदि संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(छप्पय)

सिर पर बैठो काग[1] आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनँद उर धारत।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उचारत।
स्वान[2] आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच[3] मोद[4] मढ्यो सबको हियो।
जनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आज भिखारिन कहँ दियो॥

राजा हरिश्चंद्र श्मशान में पशु-पक्षियों की यह लीला देख रहे हैं। इसके देखने से उनके मन में जो भाव उठ रहा है वही घृणा स्थायी है। मुर्दों की हड्डी, माँस, त्वचा आदि आलंबन हैं। कौओं का आँख निकालना, स्यार का जीभ खींचना, गिद्ध का माँस नोचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। इन्हें देखकर राजा का इनका वर्णन करने लगना अनुभाव है। मोह, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण बीभत्स रस है।

अद्भुत रस

किसी विलक्षण सौंदर्य को देखकर, किसी अघटित घटना को सुनकर, अथवा किसी अपूर्व चित्र, कारीगरी, कृत्य आदि को देखकर कोई सहसा चकित हो जाता है; यही आश्चर्य इस रस का स्थायी भाव है। वह विचित्र वस्तु या कार्य जिससे

---

१ कौआ। २ कुत्ता। ३ (त्वचा) चमड़ा। ४ प्रसन्नता।

आश्चर्य होता है, आलंबन विभाव है। आलंबन की महिमा सुनने से और बारबार उसका अवलोकन करने से आश्चर्य और बढ़ता है; ये उद्दीपन विभाव हैं। आश्चर्य उत्पन्न होते ही टकटकी लगाकर आलंबन की ओर देखते रहना, चेहरे का खिल उठना, सिर हिलाते हुए उसकी ओर हाथ का संकेत कर उसकी प्रशंसा करना आदि अनुभाव हैं। आलंबन को देखकर मन में हर्ष होता है, बनानेवाले की बुद्धि, कारीगरी आदि के बारे में तर्कवितर्क होते हैं, विलक्षण वस्तु देखने से हृदय में संतोष का अनुभव होता है, ये सब आश्चर्य के सहायक होने से संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

गोपी ग्वाल माली[1] जुरे आपुस में कहैं आली
कोऊ जसुधा[2] के अवतर्यौ इंद्रजाली[3] है।
कहै पदमाकर करै को यौं उताली[4] जा पै
रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है।
देखै देवताली[5] भई विधि[6] के खुसाली[7] कूदि
किलकति काली हेरि हँसत कपाली[8] है।
जनम को चाली[9] एरी अद्भुत है ख्याली[10] आजु,
काली[11] की फनाली[12] पै नचत बनमाली[13] है॥

कालियनाग को नाथकर निकलने पर व्रजवासी इस प्रकार परस्पर कह रहे हैं। वे कृष्ण का यह कृत्य देखकर जो चकित हो गए हैं, उसमें आश्चर्य स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण का कालियनाग को नाथकर यमुना से निकलना आलंबन है। श्रीकृष्ण का कालिय-

---

१ समूह। २ यशोदा। ३ जादूगर उत्पन्न हुआ है। ४ उतावली। ५ देवताओं का समूह। ६ ब्रह्मा। ७ प्रसन्नता। ८ महादेव। ९ चालबाज। १० खिलवाड़ी। ११ कालियनाग। १२ फणों का समूह। १३ श्रीकृष्ण।

नाग के फण पर उछल उछल कर नाचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। गोपी-ग्वाल का दौड़ दौड़कर एकत्र होना, इस कृत्य के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करना, देवताओं आदि का प्रसन्न होना अनुभाव हैं। कृष्ण की जन्म भर की चालों के स्मरण से स्मृति, देखने के लिए दौड़ने से उत्सुकता, हर्ष, वितर्क आदि संचारी भाव हैं। अतः पूर्ण अद्भुत रस है।

शांत रस

निर्वेद नामक स्थायी भाव की परिपूर्णता को शांत रस कहते हैं। अनेक कारणों से सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति जो तिरस्कार या उदासीनता का भाव हो जाता है वही निर्वेद है। किसी महापुरुष अथवा पुण्यक्षेत्र के दर्शन एवम् संगति से, पवित्र आश्रमों आदि में रहने से लोगों के मन में प्रायः इस भाव का उदय होता है। ये सब आलंबन विभाव हैं। शरीर और संसार की क्षणभंगुरता, साधु महात्माओं के उपदेश, ईश्वर-महिमा-श्रवण आदि उद्दीपन विभाव हैं। जब हृदय में यह भाव उत्पन्न हो जाता है तो मुख प्रसन्न हो जाता है, चित्त में प्राणियों के प्रति दया का भाव उत्पन्न होता है, कभी कभी ईश्वर के प्रेम में विह्वल होकर आँखों से आँसू निकलने लगते हैं, कभी प्रेमातिरेक से लोग नाचने-गाने तक लगते हैं। ये सब इस रस के अनुभाव हैं। हर्ष, धैर्य आदि मनोविकार निर्वेद को और भी पुष्ट करते हैं। अतः ये संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

झूमत द्वार मतंग[1] अनेक जँजीर जरे मद अंबु चुवाते[2]।
तीखे तुरंग[3] मनोगति चंचल[4] पौन के गौनहु[5] तें बढ़ि जाते।

१ हाथी। २ सिकड़ी में बँधे और मदमस्त। ३ घोड़े। ४ मन की भाँति तेज चालवाले। ५ हवा की चाल से भी।

भीतर चंदमुखी[1] अवलोकति बाहिर भूप खरे[2] न समाते।
ऐसे भए तौ कहा *तुलसी* जौ पै जानकीनाथ के रंग न राते[3] ॥

सांसारिक वस्तुओं को राम-भजन के बिना तुच्छ कहने में निर्वेद स्थायी भाव है। महात्माओं की संगति, काशी आदि पुण्यक्षेत्र के दर्शन एवम् निवास आदि से भक्त के मन में यह भाव जागरित हुआ; अतः ये आलंबन हैं। दरवाजे पर बँधे हाथी घोड़ों एवम् बंधु-बांधवों आदि की नश्वरता ही उद्दीपन विभाव है। प्रेम में मग्न होकर उपर्युक्त कथन करना ही अनुभाव है। 'ये हाथी-घोड़े नष्ट हो जायँगे' इस विचार में स्मृति, मति, वितर्क आदि संचारी भाव हैं।

सूचना—इन नौ रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने 'वत्सल' नामक एक और रस माना है। कुछ आचार्य इसे रस नहीं मानते। यह रस है या नहीं, इस विषय पर और कुछ न कहकर केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि हिंदी-साहित्याकाश के सूर्य-चंद्र तुलसीदास एवम् सूरदास ने इसे अपनाया है और इसका बड़ा ही सुंदर हृदयग्राही प्रकाश किया है। अतएव इस रस का भी परिचय दे देना आवश्यक है।

वत्सल रस

अपने छोटों पर—भाई-बहन, पुत्र-कन्या आदि पर—जो प्रेम किया जाता है उसे वात्सल्य कहते हैं। यही वात्सल्य इस रस का स्थायी भाव है। भाई-बहन, पुत्र, कन्या आदि को आधार बनाकर इस रस की स्थिति होती है; अतः ये आलंबन विभाव हैं। आलंबन की मनोहर चेष्टा, बाललीला आदि एवम् उनका

१ सुंदर स्त्री। २ अनेक राजा उपहार लेकर द्वार पर खड़े हैं। ३ राम के प्रेम में नहीं लगे।

सौंदर्य देखने, उनकी विद्या, गुण, तोतली वाणी आदि सुनने से यह प्रेम और भी बढ़ता है; ये उद्दीपन विभाव हैं। स्नेह से उनको गोद में लेना, आलिंगन करना, सिर सूँघना, सिर पर हाथ फेरना आदि चेष्टाएँ इसके अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व आदि इसके संचारी भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

कबहूँ ससि माँगत आरि[1] करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि[2] अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा *तुलसी* मन मंदिर में बिहरैं॥

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को देखकर उन पर जो प्रेम उत्पन्न हो रहा है वही वात्सल्य स्थायी भाव है। चारो बालक आलंबन हैं। चंद्र के माँगने में हठ प्रतिबिंब देखकर डरना आदि उद्दीपन विभाव हैं। माताओं का पुलकित होना अनुभाव है। हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

———

तृतीय प्रकाश

अलंकार

काव्य की शोभा करनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।*

'अलंकार' शब्द का अर्थ है 'गहना'। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को गहना पहना देने से वह सुंदर ज्ञात होने लगता है उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी सुंदर ज्ञात होता है।

'अलंकार' वस्तुतः बोलने अथवा लिखने की शैली है।

१ हठ। २ वास्ते।

*काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते—दंडी।

बोलचाल में किसी बात को श्रोता या पाठक के मन में भली भाँति बैठा देने के लिए यह आवश्यकता होती है कि बात कुछ सजाकर कही जाय। इस प्रकार बात के सजाने में जो चमत्कार आ जाता है उसे लक्षण ग्रंथों में 'अलंकार' के नाम से पुकारते हैं। यह चमत्कार बहुत स्पष्ट होना चाहिए, जिससे पाठक या श्रोता उसे शीघ्रता से समझ लें, यदि इसमें गूढ़ता रहेगी तो दूसरी ही वस्तु हो जायगी, जिसे साहित्यशास्त्र में 'व्यंग्य' कहते हैं।

सीधी सादी बात कहने से सुनने में भी उतनी अच्छी नहीं जान पड़ती। इस कारण समाज में और विशेषकर काव्य-क्षेत्र में उसे कुछ सजाकर ही कहना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि कहना हो कि 'राम का मुख सुंदर है' तो उसके स्थान पर 'राम का मुख चंद्रमा सा सुंदर है' कहने से वाक्य रोचक प्रतीत होता है।

वाक्य में 'शब्द' और उसका 'अर्थ' ही मुख्य होता है। इस विचार से अलंकारों के दो विभाग होते हैं-(१) शब्दालंकार और (२) अर्थालंकार।

शब्दालंकार

जहाँ शब्दों के कारण चमत्कार हो वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकारों में केवल शब्दगत चमत्कार होता है, अर्थगत नहीं। इसलिए जिन शब्दों के कारण कविता में चमत्कार होता है उनके स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख देने से वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अतः शब्दालंकार चमत्कारोत्पादक शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदले नहीं जा सकते। यही कारण है कि इसे 'शब्दालंकार' कहते हैं, क्योंकि ऐसे अलंकार केवल शब्दों पर ही आश्रित हैं, उनके अर्थ पर नहीं।

यहाँ पर केवल तीन मुख्य शब्दालंकारों का वर्णन किया जाता है—(१) अनुप्रास, (२) यमक और (३) श्लेष।

(१) अनुप्रास

'अच्छर सम वरु स्वर असम अनुप्रासऽलंकार'

जहाँ अक्षरों की समानता दिखाई जाय उनके स्वर मिलें या न मिलें वहाँ अनुप्रासालंकार होता है।

'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है—'अनु' अर्थात् 'बारंबार' और 'प्रास' अर्थात् 'रखना'। जहाँ वाक्य में प्रयुक्त शब्दों में बार बार वही वर्ण रखा जाय वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। 'क' से लेकर 'ह' तक व्यंजन और 'अ' से लेकर 'अः' तक स्वर कहलाते हैं। इन सबको अक्षर या वर्ण कहते हैं। ऊपर लक्षण में जो 'स्वर' शब्द लिखा गया है उसका तात्पर्य व्यंजनों में लगनेवाली 'मात्राओं' से है। जैसे—'का' में 'ा' (आकार), 'कि' में 'ि' (इकार) और 'कु' में 'ु' (उकार) की मात्राएँ हैं।

उदाहरण—(चौपाई)

वंदउँ गुरु पद पदुम[1] परागा[2]।
सुरुचि[3] सुबास[4] सरस[5] अनुरागा[6]॥

'पद', 'पदुम' और 'परागा' शब्दों के आदि में 'प' अक्षर की समानता और 'सुरुचि', 'सुबास' एवम् 'सरस' शब्दों के आदि में 'स' अक्षर की समानता है। 'पद पदुम परागा' में 'प' का स्वर (मात्रा) तीनो स्थानों में एक है, पर 'सुरुचि, सुबास, सरस' में दो शब्दों में तो 'सु' है पर तीसरे में 'स'। इसलिए स्वर नहीं मिलता। फिर भी यहाँ अनुप्रासालंकार माना जायगा।

---

१ पद्म। २ धूल। ३ सुंदर चमक। ४ सुगंध। ५ फैलता है। ६ प्रेम।

अनुप्रासालंकार के तीन भेद किए गए हैं—(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्त्यनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

छेकानुप्रास

'बर्न अनेक कि एक की जहँ सरि एकै बार'

जहाँ एक वर्ण की अथवा अनेक वर्णों की समानता केवल एक बार हो वहाँ छेकानुप्रास होता है।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अनुप्रास का प्रयोग चतुर लोग चातुरी दिखाने के लिए करते थे, इसी से इसका नाम 'छेकानुप्रास' है।

उदाहरण—(दोहा)

राधा के बर[1] बैन[2] सुनि चीनी चकित सुभाय[3]।
दाख[4] दुखी मिसरी मुरी सुधा रही सकुचाय॥

'बर बैन' में 'ब' की, 'चीनी चकित' में 'च' की, 'मिसरी मुरी' में 'म' की और 'सुधा सकुचाय' में 'स' की—केवल एक ही अक्षर की आवृत्ति है। पर 'दाख दुखी' में 'द ख' दो अक्षरों की समानता दिखाई गई है।

सूचना—अनुप्रास केवल शब्दों के आदि में आए हुए अक्षरों से ही नहीं होता, अंत में आए हुए अक्षरों से भी होता है। ऊपर दिए हुए उदाहरण में 'बैन सुनि' में 'न' का अनुप्रास है। स्मरण रखना चाहिए कि अनुप्रास एक सिलसिले से हो, तभी चमत्कार माना जायगा। यदि शब्दों के आदि-अक्षर मिलते हैं, तो आद्यक्षर ही मिलें और अंत के अक्षर मिलते हैं, तो वे ही क्रम से मिलें। किसी शब्द के आदि में जो अक्षर है वही अक्षर दूसरे शब्द के अंत में है तो अनुप्रास न

१ श्रेष्ठ। २ वचन। ३ स्वभाव से ही। ४ मुनक्का।

होगा। यथा—'रस सर' में 'र' या 'स' किसी अक्षर का अनुप्रास न माना जायगा, पर यदि 'रस-रास' होगा तो 'र' और 'स' का अनुप्रास होगा।

वृत्ति-अनुप्रास

'बर्न अनेक कि एक की जहँ सरि कैयौ बार'

जहाँ एक या अनेक वर्णों की समानता कई बार हो वहाँ वृत्ति-अनुप्रास होता है।

इसका नाम 'वृत्ति-अनुप्रास' इसलिए है कि इसमें अक्षर वीर आदि रसों का विचार करके उनकी वृत्ति के अनुकूल रखे जाते हैं। जैसे, वीर रस के लिए कुछ कठोर और टेढ़े-मेढ़े शब्दों की आवश्यकता होती है और शृंगार या शांत रस के लिए कोमल और सीधे-सुथरे शब्दों की। इसीलिए इस अनुप्रास के तीन विभाग किए गए हैं।

रस के अनुकूल कुछ बँधे हुए वर्णों का व्यवहार करने को 'वृत्ति' कहते हैं। तीन प्रधान रसों—शृंगार, वीर और शांत के अनुकूल यह तीन भागों में बाँटी गई है—

(१) *उपनागरिका वृत्ति*—यह वृत्ति शृंगार, हास्य और करुण रस में प्रयुक्त होती है। इस वृत्ति में टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ,) को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण प्रयुक्त होते हैं।

(२) *परुषा वृत्ति*—यह वीर, रौद्र और भयानक रसों में उपयोगी होती है। इसमें टवर्ग, द्वित्व वर्ण (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प आदि) रेफ और श, ष आदि कठोर वर्ण, लंबे लंबे समास और संयुक्त वर्ण (क्ख, च्छ, ड्ड, त्थ आदि) अधिक रखे जाते हैं।

(३) *कोमला वृत्ति*—यह शांत, अद्भुत और बीभत्स रसों

में काम आती है। इसमें य, र, ल, व, स, ह आदि कोमल अक्षर, छोटे छोटे समास अथवा बिना समास के शब्द काम में लाए जाते हैं।

उदाहरण—उपनागरिका वृत्ति (अर्धाली)

धरम धुरीन[1] धीर नय नागर[2]।
सत्य सनेह सील सुखसागर॥

यहाँ पर 'ध' और 'स' अक्षर शब्दों के आदि में कई बार प्रयुक्त हुए हैं, इससे वृत्त्यनुप्रास है। ये दोनो वर्ण तथा इनके अतिरिक्त और वर्णों में से अधिक वर्ण कोमल और मधुर गुण-वाले हैं, इससे यह उपनागरिका वृत्ति है।

परुषा वृत्ति—(दोहा)

वक्र[3] वक्र[4] करि पुच्छ[5] करि रुच्छ[6] रिच्छ[7] कपि गुच्छ[8]।
सुभट ठट्ट[9] घन घट्ट[10] सम, मर्दहिं रच्छन तुच्छ[11]॥

संयुक्त वर्ण (क्र, च्छ) और द्वित्व वर्ण (ट्ट) कई बार प्रयुक्त हुए ह। इनके अतिरिक्त शेष अक्षरों में भी रेफ (मर्दहिं) और कर्कश वर्णों की अधिकता है, इससे यह परुषा वृत्ति है।

कोमला वृत्ति—(दोहार्ध)

स्यामल गौर[12] किसोर[13] बर सुंदर सुषमा ऐन[14]।

यहाँ 'र' और 'स' अक्षर कई बार प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए कोमला वृत्ति है।

---

१ धर्म की धुरी को धारण करनेवाले, धर्मिष्ठ। २ नीति में चतुर, नीतिज्ञ। ३ वक्त्र (मुख)। ४ टेढ़ा। ५ पूँछ। ६ रुष्ट (क्रुद्ध)। ७ ऋच्छ (भालू)। ८ वंदरों का समूह। ९ वीरों का समूह। १० बादल की घटा। ११ तुच्छ राक्षसों का मर्दन करते हैं। १२ साँवले और गोरे। १३ बारह वर्ष से ऊपर की वय वाले (राम-लक्ष्मण)। १४ परम सुंदरता के घर (अत्यंत सुंदर)।

सूचना—इन तीनो वृत्तियों को देश के विचार से क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी कहते हैं।

लाटानुप्रास

'शब्द अर्थ एकै रहै अन्वय करतहि भेद'

जहाँ शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति हो और उनका अर्थ भी वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ बदल जाय वहाँ लाटानुप्रास होता है।

छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास वस्तुतः वर्णों के अनुप्रास हैं और लाटानुप्रास शब्दों का अनुप्रास है। इसका ऐसा नाम पड़ने का कारण यह है कि इसे 'लाट' देश (गुजरात) के लोगों ने निकाला है।

उदाहरण—(दोहा)

तीरथ व्रत साधन कहा जो निसदिन हरि गान।
तीरथ व्रत साधन कहा बिन निसदिन हरि गान॥

पूर्वार्ध का अन्वय 'जो' शब्द के साथ है और उत्तरार्ध का अन्वय 'बिन' शब्द के साथ। शेष शब्द दोनो पंक्तियों में एक ही हैं और उनका अर्थ भी एक ही है, किंतु भिन्न भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने के कारण दोनो के तात्पर्य भिन्न भिन्न हैं। पूर्वार्ध का तात्पर्य है–'यदि रातोदिन ईश्वर का भजन किया जाता है तो तीर्थ-व्रतादि की साधना करने की आवश्यकता नहीं।' और उत्तरार्ध का तात्पर्य है—'बिना रातोदिन ईश्वर का भजन किए यदि तीर्थ एवम् व्रतादि की साधना की जाय तो वह (साधना) व्यर्थ ही है।'

ऊपर वाक्य (कई शब्दों) की आवृत्ति का उदाहरण दिया गया है, अब एक शब्द की आवृत्ति का उदाहरण दिया जाता है-

नंद चख[१] चंद चंद बंस नभ[२] चंद
ब्रज चंद मुख चंद पै अनेक चंद वारौं[३] मैं।

'चंद' शब्द की आवृत्ति है। सभी स्थानों में इसका एक ही अर्थ है, पर भिन्न भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने से तात्पर्य बदल गया है।

(२) यमक

'वहै सब्द फिरि फिरि परै अर्थ औरई और'

जहाँ निरर्थक अथवा सार्थक स्वर-व्यंजनों के समूह की आवृत्ति हो वहाँ यमकालंकार होता है।

'यमक' शब्द का अर्थ है 'दो'। इसीलिए इस अलंकार में एक ही आकारवाले शब्दों का वारंबार प्रयोग होता है।

उदाहरण—(अर्धाली)

(१) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह विदेह विसेखी॥

'विदेह' शब्द दो बार आया है। पहले का अर्थ 'राजा जनक' है और दूसरे का अर्थ 'बिना शरीरवाला' है। राजा जनक राम को देखकर अपने तन-बदन की सुध-बुध भूल गए थे।

(२) चतुर है चतुरानन[४] सा वही।
सुभग भाग्य-विभूषित भाल[५] है।
मन ! जिसे मन में पर-काव्य[६] की।
रुचिरता[७] चिरताप करी[८] न हो॥

चतुर्थ चरण में 'चरिता' का यमक है। इस 'चिरता' का दोनो स्थान पर कोई अर्थ नहीं होता, इससे यह निरर्थक यमक

१ आँख। २ आकाश। ३ न्योछावर करता हूँ। ४ ब्रह्मा। ५ ललाट। ६ दूसरे की कविता। ७ सुंदरता। ८ बहुत दिनों तक संताप करनेवाली।

का उदाहरण है। पहला उदाहरण सार्थक यमक का है, क्योंकि वहाँ दोनो के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं।

सूचना—लोगों ने यमक के बहुत से भेद कर डाले हैं; पर वे सब इन्हीं सार्थक और निरर्थक के हेर-फेर से बनते हैं। उनका विस्तार यहाँ अनावश्यक है। कभी कभी पूरे पूरे वाक्यों का भी यमक होता है। इसके अतिरिक्त छंदों के चरण के अंत और आदि में एक यमक होता है, जो प्राचीन कवियों में बहुत प्रचलित था। इसका नाम 'मुक्तपद-ग्राह्य' या 'सिंहावलोकन' है। मुक्तपद-ग्राह्य' नाम इसलिए है कि पिछले चरण के अंत में जो 'पद' (शब्द) जोड़ा जाता है अगले चरण के आदि में वह ग्रहण कर लिया जाता है। 'सिंहावलोकन' इसलिए कहते हैं कि सिंह जिस प्रकार दाहिने बाएँ देखता चलता है उसी प्रकार यह यमक भी दाहिने-बाएँ पड़ता है। इसका पद्यबद्ध लक्षण यों है—

'चरन अंत अरु आदि में यमक कुंडलित होय'।

उदाहरण—*वाक्यावृत्ति* —(कवित्त)

ऊँचे घोर मंदर[1] के अंदर रहनवारी
ऊँचे घोर मंदर[2] के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं[3] कंद मूल[4] भोग करैं
तीन बेर[5] खातीं ते वै तीन बेर खातीं[6] हैं।
भूखन सिथिल अंग[7] भूखन सिथिल अंग[8]
बिजन डोलातीं[9] ते वै बिजन डोलाती हैं[10]।

---

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कंदे और जड़ें। ५ तीन बार (मरतबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त रहते थे)। ८ भूखों से शरीर शिथिल हैं। ९ पंखा झलती थीं। १० विना मनुष्य के (अकेली) घूमती हैं।

भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास[1]
नगन जड़ाती[2] ते वै नगन जड़ाती हैं[3] ॥

सिंहावलोकन—(सवैया)

लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सिंधुर[4] चारु[5] औ बाँह बिसाल[6] है।
साल[7] है सत्रुन को कबि देव सुसोभित सोमकला[8] धरे भा लहै[9]।
भाल है दीपत सूरज कोटि सो काटत कोटि कुसंकट जाल[10] है।
जाल[11] है बुद्धि बिबेकन को यह पारबती को लड़ायतो[12] लाल[13] है॥

प्रथम चरण में 'विसाल है' है। उसमें जो 'साल है' वही अगले चरण के आदि में ग्रहण किया गया है। दोनो में अर्थ अलग अलग हो गया है। इसी प्रकार शेष चरणों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—'लाटानुप्रास' में जिन शब्दों की आवृत्ति होती है उनका अर्थ एक ही होता है, पर 'यमक' में अर्थ भिन्न भिन्न होता है।

(३) श्लेष

'दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामे अर्थ'

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों वहाँ श्लेषालंकार होता है।

'श्लेष' शब्द का अर्थ है 'चिपका हुआ'। इस अलंकार में जिन शब्दों का प्रयोग होता है उनमें कई अर्थ चिपके रहते हैं।

---

१ डर। २ (गहनों में) रत्न जड़वाती थीं। ३ नंगी जाड़ा खाती हैं। ४ हाथी के ऐसा मुख। ५ सुंदर। ६ लंबी। ७ शल्य (दुःखद)। ८ चंद्रमा की कला (द्वितीया का चंद्रमा)। ९ शोभा पाता है। १० जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा। ११ समूह। १२ प्यारा। १३ पुत्र।

उदाहरण—(अर्धाली)

(१) रावन सिर सरोज बनचारी[1] ।
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी[2] ॥

यहाँ पर 'शिलीमुख' के दो अर्थ हैं—(१) बाण और (२) भौंरा। क्योंकि 'रावण के सिर-रूपी कमल-वन में शिलीमुख की सेना प्रवेश कर रही है' में केवल बाण अर्थ से खूबी नहीं आती, इसी से दो अर्थोंवाला 'शिलीमुख' शब्द रखा गया है।

अनुप्रास, यमक और श्लेष में भेद

अनुप्रास (छेक और वृत्ति) में *वर्णों की समानता* होती है पर लाटानुप्रास में *शब्दों की समानता* रहती है। लाटानुप्रास में समान शब्द दो या दो से अधिक होते हैं पर अर्थ सर्वत्र एक ही होता है अर्थात् *शब्द दो पर अर्थ एक*। यमक में दो समान शब्द रहते हैं पर अर्थ भिन्न भिन्न रहता है अर्थात् *दो शब्द और दो अर्थ*। श्लेष में एक ही शब्द के कई अर्थ लेने पड़ते हैं अर्थात् *शब्द एक और अर्थ दो*। यहाँ जहाँ जहाँ 'दो' आया है वहाँ वहाँ दो से अधिक भी समझा जाय।

अनुप्रास—(१) वर्णों की समानता—छेक-वृत्ति।
(२) शब्दों की समानता—लाट।

(इसलिए लाटानुप्रास को शब्दानुप्रास या पदानुप्रास भी कहते हैं। इसका चौथा नाम नामानुप्रास भी है।)

शब्दानुप्रास—शब्द × अर्थ
२ × १

यमक— शब्द × अर्थ
२ × २

---

१ सिर-रूपी कमल-वन में घूमनेवाली। २ सेना।

श्लेष— शब्द×अर्थ
१×२

(२) बहुरि सक्र[1] सम बिनवउँ तेही।
संतत[2] सुरानीक हित जेही॥

यहाँ 'सुरानीक' पद के दो अर्थ हैं—(१) सुर+अनीक=सेना अर्थात् देवताओं की सेना और (२) सुर=शराब+नीक=बढ़िया अर्थात् शराब अच्छी लगती है। पहला अर्थ इंद्र के पक्ष में लगता है, क्योंकि उसे देवों की सेना प्रिय है और दूसरा दुष्टों पर घटता है, जो शराब पीते हैं।

अर्थालंकार

जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय वहाँ अर्थालंकार होता है।

अर्थालंकार में अर्थ के कारण चमत्कार होता है। जिन शब्दों के अर्थ से कोई चमत्कार उत्पन्न हो रहा हो उन्हें पर्यायवाची शब्दों से बदल सकते हैं। ऐसा करने पर भी वह चमत्कार बना रहेगा।

अर्थालंकारों की संख्या सौ से भी ऊपर है। यहाँ उनमें से मुख्य मुख्य अलंकारों का वर्णन किया जाता है।

(१) उपमा

'जहँ सादृस तें होत है सोभा को परकास'

जहाँ किसी प्रकार की समानता के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कही जाय वहाँ उपमालंकार होता है।

'उपमा' शब्द का अर्थ है—'उप' अर्थात् समीप और 'मा' अर्थात् निर्णय करना (तौलना)। इस अलंकार में दो पदार्थ

१ इंद्र। २ सदा।

एक स्थान में रखकर जाँचे जाते हैं और समानता के कारण एक से कहे जाते हैं। इसी से इसे 'उपमा' कहते हैं।

उपमा के चार अंग होते हैं—(१) उपमेय, (२) उपमान, (३) साधारण धर्म और (४) वाचक।

उपमेय—जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है, जिसके लिए उपमा दी जाती है उसे उपमेय कहते हैं।

उपमान—जिस वस्तु की समता उपमेय वस्तु के साथ की जाती है अर्थात् जिसकी उपमा उसे दी जाती है उसे उपमान कहते हैं।

साधारण धर्म— जिस मिलने-जुलने वाली विशेषता के कारण उपमेय और उपमान में समता दिखाई जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं।

वाचक—जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता बतलाई या कही जाती है अथवा सूचित होती है वह वाचक कहलाता है। जैसे—सा, इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे, जिमि, समान, इमि, आदि।

उदाहरण (चौपाई)

करि कर सरिस सुभग भुजदंडा।

'भुजदंडों' (बाहुओं) का वर्णन है, अतः ये 'उपमेय' हैं। 'करि कर' (हाथी की सूँड़) से उपमेय की समता दिखाई जा रही है, अतः यह 'उपमान' है। 'सुभग' (सुंदर) के कारण इन दोनो में समानता कही गई है, इससे यह 'साधारण धर्म' है। 'सरिस' (सदृश = समान) शब्द दोनो की समानता सूचित करता है, इससे 'वाचक' है।

पूर्णोपमा

जहाँ उपमा के चारो अंग (उपमेय, उपमान, साधारण धर्म वाचक) प्रकट रूप में वर्तमान हों वहाँ पूर्णोपमा होती है।

उदाहरण—(कवित्त)

फूलि उठे कमल से अमल[1] हितू[2] के नैन
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे[3]।
दौरि आए भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे[4]।
सुरभी[5] सी खुलन सुकबि की सुमति लागी
चिरिया सी जागी चिंता जनक के जियरे[6]।
धनुष पै ठाढ़े राम रबि से लसत आज
भोर[7] के से नखत[8] नरिंद[9] परे पियरे[10]॥

प्रथम चरण में 'नयन' उपमेय, 'कमल' उपमान, 'अमल' साधारण धर्म और 'से' वाचक है। शेष चरणों में भी इसी प्रकार पूर्णोपमाएँ हैं, उन्हें स्वयम् समझ लेना चाहिए।

लुप्तोपमा

जहाँ उपमा के चारो अंगों (उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक) में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा होती है।

१—उदाहरण—(अर्धाली)

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी[11]।
हरषि सुधा सम गिरा उचारी[12]।

जहाँ गिरा (वाणी) उपमेय, सुधा (अमृत) उपमान और सम वाचक तो है, पर 'मधुर' धर्म नहीं कहा गया है। इससे यह 'धर्मलुप्तोपमा' है।

---

१ निर्मल। २ हितुआ (मित्र)। ३ शीतलता। ४ निकट। ५ गाय। ६ हृदय में। ७ प्रभात। ८ नक्षत्र (तारे)। ९ राजा। १० पीले। ११ महादेव। १२ कही।

२—(अर्धाली)

ईस प्रसाद[1] असीस[2] तुम्हारी।
सब सुत बधू देव सरि बारी॥

यहाँ पर 'सुत बधू' (पतोहुएँ) उपमेय और 'देव सरि बारी' (गंगाजल) उपमान तो हैं, पर 'पवित्र' धर्म और 'सम' वाचक नहीं हैं। इससे यह 'धर्म-वाचकलुप्तोपमा' है।

लुप्तोपमा का प्रस्तार

विचार करने से इतनी लुप्तोपमाएँ हो सकती हैं—१ उपमेय-लुप्ता, २ उपमानलुप्ता, ३ धर्मलुप्ता, ४ वाचकलुप्ता, ५ उपमेय-उपमानलुप्ता, ६ उपमेय-धर्मलुप्ता, ७ उपमेय वाचकलुप्ता, ८ उपमान-धर्मलुप्ता, ६ उपमान-वाचकलुप्ता, १० धर्म-वाचकलुप्ता, ११ उपमेय-उपमान-धर्मलुप्ता, १२ उपमेय-उपमान-वाचकलुप्ता, १३ उपमेय-धर्म वाचकलुप्ता, और १४ उपमान-धर्म-वाचकलुप्ता। इन चौदहों में ध्यान दीजिए तो उपमेय-उपमानलुप्ता में केवल धर्म और वाचक रह जायगा। भला इसमें चमत्कार क्या रह जायगा। ऐसे ही उपमेय उपमान-धर्मलुप्ता में केवल वाचक बचेगा और उपमेय-उपमान-वाचकलुप्ता में केवल धर्म बच रहेगा। वहाँ भी क्या चमत्कार हो सकेगा। उपमेय-धर्म-वाचकलुप्ता में केवल उपमान रह जाता है। यह एक पृथक् अलंकार ही मान लिया गया है जिसे रूपकातिशयोक्ति कहते हैं। अब बच गईं केवल१०लुप्तोपमाएँ। उपमेय का लोप कुछ लोग कहीं भी ठीक नहीं मानते। इसलिए उनके मत से उपमेयलुप्ता, उपमेय धर्मलुप्ता और उपमेय-वाचक लुप्ता भी चमत्कारपूर्ण नहीं हो सकतीं। इसलिए शेष सात लुप्तोपमाएँ ही बच रहती हैं। ऊपर धर्मलुप्ता और धर्म वाचकलुप्ता

१ महादेव की कृपा से। २ आशीर्वाद।

के उदाहरण दे दिए गए हैं। अन्यों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

३—उपमानलुप्ता-(अर्धाली)

समर धीर नहिं जाइ बखाना।
तोहि सम नहिं प्रतिभट जग आना[1] ॥

उपमेय—युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

धर्म—समरधीरता।

वाचक—सम।

४—वाचकलुप्ता-(चौपाई)

सरद बिमल बिधु बदन सुहावन।

उपमेय—वदन (मुख)।
उपमान—विधु (चंद्रमा)।
धर्म—सुहावन (अच्छा लगना)।

५—उपमान-धर्मलुप्ता (चौपाई)

आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।

उपमेय—पुरंदर (इंद्र)।
वाचक—सम।

६—उपमान-वाचकलुप्ता-(अर्धाली)

चितवनि चारु मार मद हरनी।
भावति हृदय जाति नहिं बरनी ॥

उपमेय—चितवनि।
धर्म—चारु, मार मद हरनी, हृदय भावति, बरनी नहिं जाति। विशेषणों से चारुता आदि धर्म होंगे।

७—उपमान-धर्म-वाचकलुप्ता (चौपाई)

अति अनूप जहँ जनकनिवासू ।

उपमेय—जनकनिवास ।

इसमें अनूप, अनुपम, अद्वितीय आदि शब्द प्रायः आते हैं।

सूचना—(१) उपमेय के लोप में लुप्ता इसलिए नहीं मानते कि उपमेय का वर्णन ही होता है वह वर्ण्य कहा जाता है प्रस्तुत भी कहलाता है। वह प्रसंग में शब्द से चाहे न कहा जाय पर रहेगा अवश्य। जैसे—'नीलम चंपक माल से कौन स्वयंवर में मृगराज कुमार से' में उपमेय धर्मलुप्ता मानते हैं। यहाँ राम-लक्ष्मण नाम लिया तो नहीं गया पर वर्णन उन्हीं का है, वे लुप्त कहाँ हैं। उपमान या धर्म या वाचक के लोप में कल्पना करनी पड़ती है, यहाँ कल्पना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिसका वर्णन हो रहा है वह प्रस्तुत है, उपस्थित है, अनुपस्थित या लुप्त कहाँ है।

(२) 'गजमुख' गणेश को कहते हैं। पर 'गजमुख' का विग्रह करते समय प्रायः लोग कहते हैं कि 'जिसका मुख हाथी के समान है वह' यह अशुद्ध है। क्योंकि गणेश का मुख हाथी के सारे शरीर के समान नहीं है, हाथी के मुख के समान है। अतः शुद्ध विग्रह होगा—'जिसका मुख हाथी के मुख के समान है वह।' इसी प्रकार लुप्तोपमा में यह कहा जाय कि 'सूछम हरि कटि ऐन' तो कुछ लोग यहाँ 'हरि' को उपमान नहीं मानते। क्योंकि कटि (कमर) का उपमान 'सिंह की कमर' है, सिंह नहीं। अतः 'हरि' (सिंह) केवल उपमा बतलाता है, उपमान नहीं है। इसलिए यह केवल वाचकलुप्ता नहीं है, उपमान वाचकलुप्ता है। ऐसे ही लुप्तोपमा में अनेक सूक्ष्म बातें मानी गई हैं।

(३) उपमा की माला भी होती है जिसे 'मालोपमा' कहते हैं—

मालोपमा

'माला उपमा कहत हैं धर्म कि भिन्न अभिन्न'

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा होती है। इसके दो प्रकार होते हैं—भिन्नधर्मा और (२) अभिन्नधर्मा।

(१) *भिन्नधर्मा*—जहाँ अनेक उपमानों के पृथक् पृथक् धर्मों से उपमा दी जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

हरन मोह तम दिनकर कर से।
सेवक सालि पाल जलधर से।
अभिमत दानि देव तरुबर से।
सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥

उपमेय है राम का नाम। दिनकर कर (सूर्यकिरण), जलधर (बादल), देवतरु (कल्पवृक्ष) और हरिहर (विष्णु और शंकर) चार उपमान हैं। पहले उपमान का धर्म 'मोह-तम-हरन', दूसरे का 'पाल' (पालन), तीसरे का 'अभिमतदानि' (मनोवांछित देना) और चौथे का 'सेवत सुलभ सुखद' है। चारो उपमानों के धर्म भिन्न भिन्न हैं इसलिए भिन्नधर्मा मालोपमा हुई।

(२) *अभिन्नधर्मा*—जहाँ उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

जेठ भानु कर से कपिल कोप लर[1] से हैं
भाल दवानल से त्यों गजब गहर[2] से।
काल बिकराल से कुमार दामिनी से देव
दारुन कला से प्रलैसिंधु की लहर से।

---

१ लड़ी, समूह। २ गह्वर, दुर्गम स्थल।

लछिराम जालिम जँजीरे जमजाल से ये
कालदंड ख्याल से कमालिया कहर[1] से।
कालिका कृपान, मुंडमाली[2] के त्रिसूल से हैं
रामचंद्र बान फनमाली[3] के जहर से॥

रामचंद्र के बाणों के 'जेठ भानु कर' (ज्येष्ठ के सूर्य की किरणें) आदि कई उपमान हैं और सबका एक ही धर्म 'तीखापन' है। इसलिए यह अभिन्नधर्मा मालोपमा है।

(२) अनन्वय

'जहाँ होय उपमेय को उपमेयै उपमान'

जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हों वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

'अनन्वय' शब्द का खंड है—अन्=नहीं + अन्वय = संबंध अर्थात् दूसरे से संबंध न होना। इस अलंकार में उपमेय का दूसरे (उपमान) के साथ संबंध नहीं दिखलाया जाता। वह स्वयम् अपना उपमान बन जाता है। इसका कारण यह होता है कि उपमेय के समान उत्कृष्ट गुणों वाला कोई ऐसा उपमान ही नहीं मिलता जिसकी उसे उपमा दी जा सके।

उदाहरण—(अर्धाली)

(१) लही न कतहुँ हारि हिय मानी।
इन सम येइ उपमा उर आनी॥

'इन सम येइ' से उपमेय स्वयम् अपना उपमान बताया गया है।

(२) राम से राम सिया सी सिया सिरमौर बिरंचि[4] बिचारि सँवारे[5]।

---

१ भीषण संकट। २ शिव। ३ शेषनाग। ४ ब्रह्मा। ५ बनाए।

'राम से राम' और 'सिया सी सिया' में दो बार अनन्वय अलंकार है।

(३) रूपक

'उपमेय रु उपमान जहँ एकै रूप कहायँ'

जहाँ उपमेय को उपमान रूप कहा जाय वहाँ रूपकालंकार होता है।

'रूपक' शब्द का अर्थ है 'रूप धारण करना'। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है।

इसके दो भेद होते हैं—(१) अभेद और (२) तद्रूप।

अभेद रूपक

जहाँ बिना निषेध के उपमेय और उपमान अभेद रूप से कहे जायँ।

'बिना निषेध' का तात्पर्य यह है कि आगे कहे जानेवाले 'अपह्नुति अलंकार' से भिन्नता हो; क्योंकि वहाँ भी 'अभेदता' होती है, पर वह निषेधपूर्वक होती है।

उदाहरण—(दोहा)

राम नाम नरकेहरी[१] कनककसिपु[२] कलिकाल।
जापक[३] जन प्रहलाद जिमि दलि पालिहि सुरसाल[४]॥

राम नाम पर नृसिंह का, कलिकाल पर हिरण्यकशिपु का और जप करनेवालों पर प्रह्लाद का अभेद आरोप किया गया है।

इसके तीन भेद हैं—(१) सावयव (सांग), (२) निरवयव (निरंग) और (३) परंपरित।

---

१ नृसिंह। २ हिरण्यकशिपु (प्रह्लाद का पिता)। ३ राम नाम का जप करनेवाला भक्त। ४ देवताओं को कष्ट देनेवाले (दैत्यों) को मारकर पालेगा (रक्षा करेगा)।

१—सावयव

जहाँ अवयवों अर्थात् अंगों सहित उपमान का उपमेय में आरोप किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

नारि कुमुदिनी अवध सर रघुवर बिरह दिनेस।
अस्त भए बिकसित भईं निरखि राम राकेस॥

आरोप्यमाण (जिनका आरोप किया जाता है वे) कुमुदिनी (रात में खिलनेवाली कुईं), सर (तालाब), दिनेश (सूर्य) तथा राकेश (चंद्रमा) इन चारो का और क्रमशः इन चारो के आरोप्य विषय (जिन पर आरोप किया जाता है वे) नारि (स्त्रियाँ), अवध (अयोध्या), रघुवरविरह और राम का शब्दों द्वारा स्पष्ट रूप से कथन किया गया है। यहाँ 'राम राकेश' के अवयव या अंग 'नारि कुमुदिनी, अवध सर और विरह दिनेश' हैं अतः यह सावयव रूपक है।

सूचना—इस रूपक में कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी अंग का नाम तो ले लिया जाता है पर उसका उपमान नहीं कहा जाता। ऐसे सावयव रूपक को एकदेशविवर्ती कहते हैं, क्योंकि इसमें एकाध बात छोड़ दी जाती है। जैसे—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका प्रान जाहिं केहि बाट॥

हनूमान् सीता का समाचार लेकर लौट आए हैं और श्रीराम ने पूछा कि सीता कैसे राक्षसों के बीच बची रह गई हैं। इस पर हनूमान् कहते हैं कि आपका नाम पहरेदार है। आपका ध्यान किवाड़ है। सिर नीचा किए अपने पैरों को देखती रहती हैं यही ताला लगा है। फिर उनके प्राण कैसे निकलें। यहाँ प्राण को

बंदी कहना चाहिए था पर नहीं कहा गया। रूपक में सब अवयव तो कहे गए पर एक छूट गया।

२—निरवयव

जहाँ अवयवों (अंगों) अर्थात् सामग्री के बिना केवल उपमान का उपमेय में आरोप भर किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

अवसि चलिय बन राम पहँ भरत मंत्र[1] भल कीन्ह।
सोकसिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलंबन दीन्ह॥

'सिंधु' (समुद्र) का बिना किसी अंग के 'सोक' पर आरोप किया गया है। सिंधु के अवयव मकर, तरंग आदि का कथन करके विस्तार नहीं किया गया।

३—परंपरित

जहाँ प्रधान रूपक का कारण एक दूसरा ही रूपक हो, अर्थात् प्रधान रूपक के लिए पहले किसी अंतर्गत रूपक का निरूपण कर लिया जाय।

'परंपरित' शब्द का अर्थ है 'सिलसिलेवार'। इस रूपक में पहले एक रूपक बनाया जाता है और उस रूपक के आधार पर दूसरे रूपक का वर्णन या निरूपण होता है; यही सिलसिला या परंपरा है। इसी से इसे 'परंपरित' रूपक कहते हैं।

उदाहरण—(अर्धाली)

मोह महा घन पटल प्रभंजन।
संसय बिपिन[2] अनल[3] सुररंजन[4]॥

राम पर 'प्रभंजन (आँधी) उपमान का आरोप प्रधान

१ सलाह। २ वन। ३ अग्नि। ४ देवताओं को प्रसन्न करनेवाले।

रूपक है, पर राम को प्रभंजन कहने के पहले महामोह पर घन-पटल (बादलों का परदा) उपमान का आरोप कर लिया गया है, जो 'राम प्रभंजन' रूपक का कारण है। इसी प्रकार दूसरे चरण में राम को अनल कहने के लिए संशय को विपिन कह दिया गया है।

तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रखकर भी उसी का रूप और उसी का कार्य करनेवाला कहा जाय।

'तद्रूप' शब्द का अर्थ है 'उसका रूप'। इनमें उपमेय उप-मानरूप कहा जाता है, दोनो की एकता नहीं हो जाती।

उदाहरण—(दोहा)

रच्यो विधाता[1] दुहुँन लै सिगरी[2] सोभा साज।
तू सुंदरि सचि दूसरी यह दूजो सुरराज॥

दूसरी शची (इंद्राणी) और दूसरा सुरराज (इंद्र) कहकर उपमेय को उपमान से भिन्न तो रखा गया है पर उसी का रूप बताया गया है।

(४) दीपक

'बर्न्य अबर्न्यंन को जहाँ एकै धर्म कहाय'

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(दोहा)

(१) कमल कलानिधि[3] मालती किसलय[4] नारि सुभाय।
सकल मनोहर होत हैं कोमलता को पाय॥

नारि उपमेय और कमल आदि उपमानों का एक ही धर्म 'कोमलता से मनोहर होना' कहा गया।

---

१ ब्रह्मा। २ समस्त। ३ चंद्रमा। ४ नए पत्ते।

पुनः—(दोहार्ध)

(२)—गज मद सों नृप तेज सों सोभा लहत बनाय।

नृप उपमेय और गज उपमान दोनो का एक धर्म 'शोभा पाना' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार का और दीपक होता है जिसे 'आवृत्ति दीपक' कहते हैं।

'आवृत्ति दीपक'

'क्रियापदन को होत जहँ आवर्तन को जोग'

जहाँ क्रियापदों की आवृत्ति हो वहाँ 'आवृत्ति दीपक' होता है।

उदाहरण—(दोहा)

भलो भलाई पै[1] लहै[2] लहै निचाई नीच।
सुधा[3] सराहिय[4] अमरता गरल[5] सराहिय मीच[6] ॥

'लहै' और 'सराहिय' क्रियापद दो दो बार आए हैं। इसके तीन भेद होते हैं—(१) पदावृत्ति, (२) अर्थावृत्ति और (३) पदार्थावृत्ति।

पदावृत्ति

'अर्थ दोय पद एक की आवृत्ति करिये जौन'

जहाँ भिन्न भिन्न अर्थवाले—पर एक ही आकार के—क्रियापदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

बहैं[7] रुधिरसरिता[8] बहैं[9] किरवानैं[10] कढ़ि कोस[11]।
बीरन बरहिं[12] बरांगना[13] बरहिं[14] सुभट रन रोस[15] ॥

---

१ निश्चित रूप से। २ शोभा पाता है। ३ अमृत। ४ प्रशंसा की जाती है। ५ विष। ६ मृत्यु। ७ बहती हैं। ८ खून की नदियाँ। ९ चलती हैं। १० तलवारें। ११ म्यान। १२ वरण करती हैं। १३ सुंदर स्त्रियाँ (अप्सराएँ)। १४ जलते हैं। १५ क्रोध।

'बहैं' और 'बरहिं' दो क्रियापदों की आवृत्ति है, पर इनके अर्थ बदल बदल गए हैं।

अर्थावृत्ति

'सब्द भिन्न पै अर्थ इक की जहँ आवृत्ति होय'

उदाहरण—(अर्धाली)

पय पयोधि[1] तजि अवध विहाई[2]।
जहँ सिय राम लखन रहे आई॥

'तजि' और बिहाई' का एक ही अर्थ है।

पदार्थावृत्ति

'पद अरु अर्थ दुहुँन की आवृति होवै जौन'

जहाँ एक ही आकार और अर्थवाले क्रियापदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

तोरयो नृप गन को गरब तोरयो हर कोदंड[3]।
राम जानकी जीव को तोरयो दुःख अखंड॥

सूचना—पदावृत्ति और यमक में एवम् पदार्थावृत्ति और लाटानुप्रास में अंतर यह है कि आवृत्ति दीपक में केवल क्रिया-पद प्रयुक्त होते हैं।

(५) भ्रांतिमान्

'भ्रांति और की और में निस्चित जब अनुमान'

जहाँ उपमान के समान उपमेय को देखने पर उपमान का निश्चयात्मक भ्रम हो जाय, वहाँ भ्रांतिमान् अलंकार होता है।

१ क्षीरसागर। २ त्याग कर। ३ महादेव का धनुष।

उदाहरण—(दोहा)

बिल बिचारि प्रविसन लग्यो ब्याल[1] सुंड में ब्याल[2] ।
ताहू कारी ऊँख भ्रम लियो उठाइ उताल[3] ॥

सर्प को हाथी की सूँड़ में बिल को तथा हाथी को सर्प में काली ईख की निश्चयात्मक भ्रांति हुई है ।

(६) संदेह

'बहु बिधि बर्नन बर्न्य को नियत न तथ्य अतथ्य'

जहाँ सत्यासत्य का ठीक निश्चय न होने के कारण उपमेय का उपमान के रूप में वर्णन किया जाय ।

उदाहरण—(कवित्त)

कैधौं हिम भूधर[4] की कलित कलंगी[5] तीन
ताज[6] मध्य कैधौं ये तिलक असुरारी[7] को ।
कैधौं सत्व रज तम सोभित एकत्र कैधौं
बिजयनिसान तीन लोक भट भारी को ।
कैधौं त्रयताप त्यौरी बदलि बिलोकैं बैठे
भूमिसुर[8] सज्जन बिबुध[9] बिघ्नकारी को ।
कैधौं बद बैद्यनाथ जल थल ब्योमचर
आरतन त्रान[10] कै त्रिसूल त्रिपुरारी को ।

शिव के त्रिशूल उपमेय को हिमालय की कलंगी आदि उपमानों के रूप में वर्णन किया गया है ।

(७) अपह्नुति

'मिथ्या कीजै सत्य को सत्य जु मिथ्या होत'

---

१ हाथी । २ सर्प । ३ शीघ्रता से । ४ हिमालय । ५ किरीट । ६ मुकुट । ७ विष्णु । ८ ब्राह्मण । ९ देवता । १० दुखियों की रक्षा करनेवाला ।

जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाय। 'अपह्नुति' शब्द का अर्थ 'छिपाना' है। इस अलंकार में उपमेय का निषेध करके उसे छिपाया जाता है।

इसके छह भेद होते हैं—(१) शुद्धापह्नुति (२) हेत्वपह्नुति, (३) पर्यस्तापह्नुति, (४) भ्रांतापह्नुति, (५) छेकापह्नुति और (६) कैतवापह्नुति।

शुद्धापह्नुति

'दुरै सत्य उपमेय को प्रकट करै उपमान'

जहाँ वास्तविक उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाय।

उदाहरण—(अर्धाली)

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला।
बंधु न होय मोर यह काला॥

सुग्रीव के कथन में वास्तविक उपमेय 'बंधु' (बालि) का निषेध करके 'काल' उपमान की स्थापना की गई है।

हेत्वपह्नुति

'सुद्धापह्नुति में जहाँ कहिये हेतु बनाय'

जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन करने में कारण भी बतलाया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राति माँझ रवि होत नहिं ससि नहिं तीव्र सु लाग।
उठी लखन अवलोकिये बारिधि सों बड़वाग॥

शशि (चंद्रमा) में वाड़वाग्नि की स्थापना करने के कारण रात में सूर्य का न होना और चंद्रमा का तीव्र न लगना बतलाया गया है।

पर्यस्तापह्नुति

'धर्म और में राखिये धर्मी साँच छिपाय'

जहाँ उपमान का निषेध करके उसपर उपमेय का आरोप किया जाय।

'पर्यस्त' शब्द का अर्थ है 'उलटा'। शुद्धापह्नुति में उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाता है। यहाँ उसके विपरीत उपमान का निषेध करके उपमेय का आरोप किया जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

है न सुधा यह है सुधा संगति साधुसमाज।

'सुधा' उपमान (अमृत) का निषेध करके साधुसमाज की संगति को ही सुधा कहा गया है। साधुसमाज पर सुधा का आरोप है।

भ्रांतापह्नुति

'भ्रम संका मन और के कछु कारन तें होय
दूरि करै कहि सत्य सो भ्रांतापह्नुति सोय'

जहाँ किसी को किसी पदार्थ में अन्य पदार्थ का भ्रम हो जाय और उसका निवारण सत्य बात कहकर किया जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक[1] न असनि[2] न केतु न राहू॥
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

रामचंद्र की सेना को रावण के किरीटों में लूक आदि का म हो गया था, जिसका निवारण (उत्तरार्ध में) किया गया है।

छेकापह्नुति

'संका नासै और की साँची बात दुराय'

---

१ उल्का। २ वज्र।

जहाँ किसी गुप्त बात को किसी प्रकार से सूचित करके फिर उसे छिपाया जाय।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अपह्नुति में कोई व्यक्ति अपनी गुप्त बात किसी से कहता है, पर उसका भेद कोई तीसरा व्यक्ति न समझ ले, इसी से वह अपनी कही हुई बात को दूसरा अभिप्राय बताकर छिपाता है। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं। 'मुकरी' का अर्थ 'पलट जाना'—'बदल जाना' है। जो बात पहले कही गई थी उसका निषेध करके दूसरे अभिप्राय का आरोप होने से इसे 'मुकरी' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

तिमिर बंस हर[1] अरुन कर[2] आयो सजनी भोर।
'सिव सरजा'[3] चुप रहि सखी सुरज[4] कुल सिरमोर[5]॥

'तिमिर बंस हर', 'अरुन कर' और 'आयो भोर' कहने पर श्रोता ने 'शरजाह शिवाजी' कहा पर वक्ता ने 'सूर्य' कहकर बात छिपा ली।

कैतवापह्नुति

'मिस व्याजादिक सब्द दै कहै आन को आन'

जहाँ पर उपमेय का निषेध कैतव, मिस, व्याज आदि शब्दों द्वारा किया जाय।

'कैतव' शब्द का अर्थ है—'छल', 'बहाना'। इस अपह्नुति में अन्य अपह्नुतियों की भाँति स्पष्ट 'न' से निषेध नहीं किया जाता बल्कि 'कैतव' आदि शब्दों से इसका निषेध जरा घुमा-

---

१ अंधकार का समूह हरण करनेवाला और तैमूर के वंशजों (मुगलों) को मारनेवाला। २ लाल रंग की किरणों वाला और लाल हाथों वाला। ३ शरजाह उपाधि। ४ सूर्य। ५ वंश में श्रेष्ठ।

फिराकर किया जाता है और अर्थ के द्वारा 'अपह्नुति' का बोध होता है, इसी से इसे 'आर्थी अपह्नुति' भी कहते हैं।

उदाहरण—(अर्धाली)

लखी नरेस बात फुरि साँची।
तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥

स्त्री के बहाने मृत्यु के सिर पर नाचने का भाव यह है कि वस्तुतः कैकेयी स्त्री नहीं, मृत्यु है। यहाँ 'मिस' शब्द से कैकेयी (तिय) का निषेध और मृत्यु का उस पर स्थापन वर्णित है।

(८) उत्प्रेक्षा

'आन बात को आन में जहँ संभावन होय'

जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) की उपमान (अप्रस्तुत) रूप में संभावना की जाय।

'उत्प्रेक्षा' शब्द का खंड है-उत्+प्र+ईक्षा अर्थात् प्रधानता से बलपूर्वक देखना। इस अलंकार में उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता से उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

लता भवन तें प्रगट भे तेहि औसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल[1] बिलगाइ[2]॥

लताकुंज से राम लक्ष्मण उपमेय के निकलने पर उनके दो निर्मल चंद्रों से भिन्न होते हुए भी उनमें बलपूर्वक इनकी संभावना की गई है।

इस अलंकार के वाचक मनु, जनु, जानो, इव, खलु आदि हैं। इसके तीन भेद हैं—(१) वस्तु, (२) हेतु और (३) फल।

१ बादलों का परदा। २ हटाकर।

वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ एक वस्तु (उपमान) की संभावना दूसरी (उपमेय) के रूप में हो।

उदाहरण—(दोहा)

सखि सोहत गोपाल के उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनौं पिये, दावानल की ज्वाल[1] ॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर पड़ी हुई गुंजों की माला वस्तु (उपमेय) में दावाग्नि की ज्वाला (उपमान) की संभावना की गई है।

हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु (जो वस्तुतः हेतु नहीं है) को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

उदाहरण—(दोहा)

रवि अभाव लखि रैन[2] में दिन लखि चंद्र बिहीन।
सतत उदित यहि हेतु जनु जस प्रताप भुवि[3] कीन ॥

किसी राजा के यशप्रताप के पृथ्वी पर फैलने का वर्णन है, राजा ने पृथ्वी पर, रात में सूर्य का उदय न होने और दिन में चंद्र का प्रकाश न होने के कारण ही वस्तुतः अपने प्रताप और यश को नहीं फैलाया है; किंतु इसे ही हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की गई है।

फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अफल (जो वस्तुतः फल न हो) को फल मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

---

१ एक बार श्रीकृष्ण व्रजवासियों को बचाने के लिए दावाग्नि को पी गए थे। २ रात्रि। ३ पृथ्वी पर।

उदाहरण—(दोहा)

दुवन-सदन[1] सबके बदन 'सिव सिव' आठौ जाम।
निज बचिबे को जपत जनु तुरकौ[2] हर[3] कौ नाम॥

मुसलमानों का 'शिव शिव' (शिवाजी का नाम) कहना अपनी रक्षा के लिए भगवान् शंकर का जप करना नहीं है, पर इसी अफल को फल मानकर उत्प्रेक्षा की गई है।

हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा में अंतर

हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का अंतर क्रिया से ज्ञात होता है। यदि क्रिया किसी हेतु से की गई हो तो हेतूत्प्रेक्षा और किसी फलप्राप्ति की इच्छा से की गई हो तो फलोत्प्रेक्षा होगी। जैसे—राम के शरीर पर रक्त की बूँदें ऐसी शोभित हैं—(१) मानो लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर आनंद से बैठे हैं (हेतूत्प्रेक्षा)। (२) मानो लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर सघन छाया के लोभ से आकर बैठे हैं (फलोत्प्रेक्षा)।

कभी कभी उत्प्रेक्षा में वाचक का प्रयोग नहीं होता इसे 'गम्योत्प्रेक्षा' कहते हैं।

गम्योत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षावाचक शब्दों का लोप हो।

उदाहरण—(चौपाई)

इनहिं देखि बिधि[4] मन अनुरागा। पटतर जोग[5] बनावन लागा।
कीन्ह बहुत श्रम अइक[6] न आए। एहि इरषा बन आनि दुराए[7]॥

यहाँ चतुर्थ चरण में 'मानो' वाचक का लोप है।

---

१ शत्रु के घर में। २ तुर्क (मुसलमान) भी। ३ महादेव। ४ ब्रह्मा। ५ समता के योग्य। ६ अंदाज। ७ छिपाए, भेज दिए।

(६) अतिशयोक्ति

'जहाँ अलौकिक उक्ति स्यों वस्तु प्रसंसा होय'

जहाँ लोकसीमा का उल्लंघन करते हुए प्रस्तुत (उपमेय) की प्रशंसा की जाय।

'अतिशयोक्ति' शब्द में 'अतिशय' का अर्थ है 'लोकसीमा का उल्लंघन'। इसलिए जहाँ कोई ऐसी बात कही जाती है जो लौकिक सीमा के बाहर हो वहाँ यह अलंकार होता है।

उदाहरण—(अर्धाली)

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदउ न बरनइ पारा।

संसार में यह बात प्रसिद्ध और मान्य है कि शारदा (सरस्वती) सबका वर्णन कर सकती हैं, पर उसका उल्लंघन करके उनके द्वारा राम के घोड़े की शोभा का वर्णन न कर सकना कहा गया है।

इसके छह प्रकार होते हैं-(१) रूपकातिशयोक्ति, (२) भेदकातिशयोक्ति. (३) सबंधातिशयोक्ति, (४) अक्रमातिशयोक्ति, (५) चपलातिशयोक्ति और (६) अत्यंतातिशयोक्ति।

रूपकातिशयोक्ति

'जहँ केवल उपमान तें प्रगट होत उपमेय'

जहाँ उपमेय के कहे बिना केवल उपमान में ही उपमेय का अभेद दिखाया जाय अर्थात् केवल उपमान के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान कराया जाय।

'रूपकातिशयोक्ति, में 'रूपक' शब्द का अर्थ है उपमान द्वारा उपमेय का रूप धारण करना। प्राचीन आचार्यों ने इसका पूरा अर्थ यों लिखा है—'जहाँ उपमान उपमेय को अपने में पचा

जाय और उपमान से उपमेय का अभेद होकर केवल उपमान से ही उपमेय का ज्ञान हो जाय।'

उदाहरण—(चौपाई)

राम सीय सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कवि केहीं।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहिं भूष[1] अहि लोभ अमी[2] के॥

अरुण पराग, जलज (कमल), शशि (चंद्रमा) और अहि (सर्प) उपमानों द्वारा ही क्रमशः सिंदूर, (राम की) हथेली, (सीता का) मुख और (राम की) भुजा उपमेयों का ज्ञान कराया गया है।

भेदकातिशयोक्ति

'औरै यों करिकै जहाँ बरनत सोई बात'

जहाँ उपमेय की अभिन्नता होने पर भी भिन्नता कही जाय।

'भेदकातिशयोक्ति' में 'भेदक' शब्द का अर्थ है भेद करने-वाला। इस अलंकार में 'और ही' आदि शब्दों के द्वारा उपमान से उपमेय को भिन्न कहा जाता है। इस अलंकार के वाचक 'और ही', 'न्यारा' आदि हैं।

उदाहरण—(दोहा)

औरै हँसनि विलोकिबो औरै बचन उदार।
तुलसी ग्रामबधून के देखे रह न सँभार॥

'औरै' शब्द के द्वारा हँसने, देखने और बोलने की भिन्नता कही गई है।

संबंधातिशयोक्ति

'जहँ अयोग्य में योग्यता कै अयोग्यता योग्य'

जहाँ असंबंध में संबंध कहा जाय अर्थात् अयोग्य में भी

---

१ भूषित करता है। २ अमृत।

योग्यता दिखाई जाय। अथवा संबंध में असंबंध कहा जाय अर्थात् योग्य में अयोग्यता दिखाई जाय।

असंबंध में संबंध

उदाहरण—(अर्धाली)

फबि फहरैं अति उच्च निसाना।
तिन महँ अटकत विबुध विमाना॥

झंडों की ऊँचाई इतनी बढ़ाकर कही गई है कि उनमें देवताओं के विमान उलझ जाते हैं। यही अयोग्य में योग्यता या असंबंध है।

संबंध में असंबंध

उदाहरण—(अर्धाली)

अति सुंदर लखि मुख सिय तेरो।
आदर हम न करत ससि केरो॥

आदर करने योग्य चंद्रमा का आदर न करना कहा गया है।

सूचना—(१) जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि के लिए किसी का वर्णन न कर सकने की बात कही जाती है वहाँ भी यही अलंकार होता है।

उदाहरण—(दोहा)

जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम बर बेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत सहस सारदा सेप॥

(२) संबंध में असंबंध को असंबंधातिशयोक्ति नाम से कोई कोई पृथक् भेद भी मानते हैं।

अक्रमातिशयोक्ति

'कारन कारज को जहाँ होय क्रमरहित संग'

जहाँ कारण और कार्य का बिना क्रम के एक साथ वर्णन किया जाय।

इसके वाचक 'संग ही', 'साथ ही' आदि हैं।

उदाहरण--(दोहा)

बानासन तें रावरे बान विषम रघुनाथ।
दससिर सिर धर तें छुटे, दोऊ एकहि साथ॥

धनुष से बाणों का और धड़ से सिरों का अलग होना एक साथ कहा गया है।

चपलातिशयोक्ति

'हेतु-ज्ञान ही सों जहाँ, पूरो-काज-प्रकास'

जहाँ कारण के ज्ञान से अर्थात् उसके देखने, सुनने मात्र से कार्य का हो जाना कहा जाय।

'चपलातिशयोक्ति' में 'चपला' शब्द का अर्थ है 'बिजली'। जिस प्रकार बिजली के चमकने और उसकी चमक के देखे जाने में विलंब नहीं होता उसी प्रकार इस अलंकार में कारण के ज्ञान से ही कार्य हो जाता है।

उदाहरण--(अर्धाली)

तब सिव तीसर नैन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा॥

शिव का नेत्र खोलना कारण के ज्ञान से ही कामदेव का जल जाना कार्य हो गया है।

अत्यंतातिशयोक्ति

'होत हेतु पीछे जहाँ होत प्रथम ही काज'

जहाँ कारण के पहले ही कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राजन राउर[1] नाम जस सब अभिमत दातार[2] ।
फल अनुरागी महिपमनि मन अभिलाष[3] तुम्हार ॥

फल (कार्य) पहले मिल जाता है, उसके पाने का अभिलाष (कारण) पीछे होता है ।

(१०) दृष्टांत

'पद समूह जुग धर्म जहँ जिमि बिंबहिं प्रतिबिंब'

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों तथा उन दोनों के धर्मों में बिंब प्रतिबिंब भाव हो ।

'दृष्टांत' शब्द का अर्थ 'निश्चय का देखना' है । इस अलंकार में उपमेय वाक्य कहकर उपमान वाक्य द्वारा उसका निश्चय कराया जाता है ।

उदाहरण—(दोहा)

भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥

पूर्वार्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्ध उपमान वाक्य । पहले का धर्म 'विधि हरि हर पद पाकर भी राजमद न होना' और दूसरे का 'काँजी की बूँदों से भी न बिगड़ना' है, ये बिंब-प्रतिबिंब-वत् कहे गए हैं । उपमेय वाक्य राजमद से विचलित होना बिंब या मूर्ति है पर उपमान वाक्य में क्षीरसिंधु का काँजी की बूँदों से न बिगड़ना जो कहा गया है वह ज्यों का त्यों नहीं है । उसकी छाया मात्र है प्रतिबिंब है ।

(११) अर्थांतरन्यास

'कह्यो अरथ जहँ ही लियो और अरथ-उल्लेख

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा समर्थन किया जाय । 'अर्थांतरन्यास' शब्द में 'अर्थांतर' का अर्थ है 'अन्य अर्थ'

१ आपका । २ मनोवांछित देनेवाला । ३ मन की इच्छा फल के पीछे पीछे चलती है ।

और 'न्यास' का अर्थ है 'रखना'। इस अलंकार में एक बात के समर्थन के लिए दूसरे अर्थ (बात) का प्रयोग होता है।

उदाहरण—(दोहा)

कारन तें कारज कठिन होइ दोष नहिं मोर।
कुलिस[1] अस्थि[2] तें उपल[3] तें लोह कराल कठोर॥

इस दोहे में 'कारण से कार्य का कठोर होना' प्रस्तुत (उपमेय) अर्थ है। वज्र (जो दधीचि की हड्डी का बना है) के हड्डी से और लोहे (जो पत्थर से पैदा होता है) के पत्थर से अधिक कठोर होने के अप्रस्तुत (उपमान) अर्थ से इसका समर्थन किया गया है।

इसके दो प्रकार हैं—(१) विशेष भेद और (२) सामान्य भेद।

विशेष भेद

जहाँ किसी सामान्य अर्थ का समर्थन विशेष अर्थ से किया जाय।

उदाहरण—(अर्धाली)

रामभजन बिनु मिटहि न कामा[4]॥
थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥

यहाँ पहला चरण सामान्य है और दूसरा विशेष।

सामान्य भेद

जहाँ किसी विशेष अर्थ का समर्थन सामान्य अर्थ द्वारा किया जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भे निसिचर तबहीं।
साधु अवज्ञा[5] तुरत भवानी। कर कल्यान-अखिल कर हानी।

१ वज्र। २ हड्डी। ३ पत्थर। ४ कामना। ५ अपमान।

विभीषण के चले जाने से निशाचरों का आयुहीन होना विशेष बात है। इसका समर्थन 'साधुओं के अपमान से तुरंत कल्याण की हानि होती है', इस सामान्य बात से किया गया है।

सूचना—(१) दृष्टांत और अर्थांतरन्यास में अंतर यह है कि उसमें दो वाक्यों और उनके धर्मों का केवल बिंब-प्रतिबिंब भाव होता है और इसमें सामान्य अथवा विशेष अर्थों का एक दूसरे से समर्थन किया जाता है।

(२) दृष्टांत में सामान्य का समर्थन सामान्य से अथवा विशेष का समर्थन विशेष से होता है पर अर्थांतरन्यास में सामान्य का समर्थन विशेष से या विशेष का सामान्य से अर्थात् दृष्टांत में दोनो वाक्य या बातें एक ही प्रकार की होती हैं पर यहाँ दो बातें भिन्न भिन्न प्रकार की।

(१२) अन्योक्ति

'अप्रस्तुत सों होत जहँ सम प्रस्तुत को ज्ञान'

जहाँ समान अप्रस्तुत के द्वारा समान प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाय वहाँ अन्योक्ति होती है।

उपमेय और उपमान के लिए कुछ शब्द और हैं—उपमेय को वर्ण्य या प्रस्तुत भी कहते हैं और उपमान को अवर्ण्य या अप्रस्तुत। 'अन्योक्ति में जो कुछ वर्णन किया गया है वह अप्रस्तुत का किंतु तात्पर्य होता है प्रस्तुत से। 'अन्योक्ति' में 'अन्य' का अर्थ यह है कि बात कही किसी पर जाती है और वह लगती किसी अन्य पर है।

उदाहरण—(कुंडलिया)

दानी हौ सब जगत में एकै तुम मंदार।
दारन[1] दुख दुखियान के अभिमत फल दातार[2]।

---

१ दल देनेवाले। २ मनोवांछित फल देनेवाले।

अभिमत फल दातार देव जन सेवैं हित सों।
सकल संपदा मोह छोह किन राखौ चित सों।
बरनै दीनदयाल छोह तव सुखद बखानी।
ताहि सेइ जो दीन रहै दुख तौ कस दानी॥

मंदार अर्थात् कल्पवृक्ष अप्रस्तुत का वर्णन किया गया है पर तात्पर्य किसी उदारचेता धनी पुरुष (समान प्रस्तुत) से है।

(१३) व्याजस्तुति

'स्तुति में जहँ निंदा कढ़ै स्तुति निंदा में होय'

जहाँ निंदा से स्तुति का अथवा स्तुति से निंदा का तात्पर्य हो। 'व्याजस्तुति' शब्द का अर्थ है 'बहाने से स्तुति' या 'बहाने की स्तुति (निंदा)'। इसी से इस अलंकार में की तो जाती है स्तुति या निंदा, पर तात्पर्य उससे ठीक विपरीत होता है।

निंदा के बहाने स्तुति

उदाहरण—(कवित्त)

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइबे कौं
तासों कहै कोऊ एक अधम अयान[1] में;
जाहु जनि पंथी उत विपत्ति विसेष होति
मिलैगो महान कालकूट[2] खान पान में।
कहै पदमाकर भुजंगन बँधैंगे अंग
संग में सु भारी भूत चलैंगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल बिन
अंबर[3] फिरैगो तू दिगंबर[4] दिसान में॥

'स्नान करनेवालों को जहर खाने को मिलेगा' आदि बातें

१ अज्ञान। २ विष। ३ वस्त्र। ४ नग्न।

कहकर गंगा की निंदा की गई है, पर 'वे महादेव के समान बना देंगी' यह स्तुति निकलती है।

स्तुति के बहाने निंदा

उदाहरण—(चौपाई)

धन्य कीस[१] जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई[२]। पति हित करत करम निपुनाई।

स्वामी के लिए नाचने-कूदने वाले बंदरों की स्तुति तो की गई है पर इसमें कहनेवाले का तात्पर्य उनकी निंदा करना है।

(१४) विरोधाभास

'जहँ विरोध नहिं वास्तविक, है ताको आभास'

जहाँ वस्तुतः विरोध न होकर विरोध का आभास मात्र हो वहाँ विरोधाभास होता है।

यह स्वभावतः प्रश्न होता है कि विरोध किन किन में हो सकता है। विरोधाभास में चार के बीच विरोध होता है—जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में। इन चारो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए।

जाति—एक ही प्रकार के एक से अधिक पदार्थों के समूह को जाति कहते हैं। पदार्थ के इस सामान्य रूप का ज्ञान करानेवाले शब्द जातिबोधक होते हैं; जैसे—मनुष्य, गौ, वृक्ष आदि।

गुण—किसी जाति की विशेषता का नाम गुण है। इस विशेषता को बतानेवाले शब्द गुणवाचक कहलाते हैं; जैसे—साँवला (मनुष्य), धवरी (गाय), सूखा (वृक्ष) आदि।

१ बंदर। २ प्रसन्न करके।

क्रिया—पदार्थ के साध्य धर्म[1] का नाम क्रिया है। जिस शब्द से इस धर्म का ज्ञान होता है उसे क्रियावाचक कहते हैं; जैसे—चलना, दौड़ना, उगना।

द्रव्य—किसी एक पदार्थ या व्यक्ति को द्रव्य कहते हैं और इसे बतानेवाले शब्द को द्रव्यवाचक या यदृच्छा कहते हैं; जैसे--राम, कामधेनु, आम आदि।

अब यदि प्रस्तार करें तो दस प्रकार का विरोध हो सकता है—

(१) जाति का जाति से विरोध,
(२) जाति का गुण से विरोध,
(३) जाति का क्रिया से विरोध,
(४) जाति का द्रव्य से विरोध,
(५) गुण का गुण से विरोध,
(६) गुण का क्रिया से विरोध,
(७) गुण का द्रव्य से विरोध,
(८) क्रिया का क्रिया से विरोध,
(९) क्रिया का द्रव्य से विरोध और
(१०) द्रव्य का द्रव्य से विरोध,

नीचे केवल दो उदाहरण दिए जाते हैं—

(दोहा)

(१) सीता नयन चकोर सखि रविबंसी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमल मुख भलो बनो है साथ॥

---

१. एक क्रिया को सिद्ध करने के लिए कई छोटे मोटे कार्य आगे-पीछे करने पड़ते हैं। इनके पूरे उतरने पर ही क्रिया की सिद्धि आश्रित रहती है। ये कार्य देखने में अनेक होने पर भी एक ही प्रधान क्रिया के साधक होते हैं। अतएव इन सबसे सिद्ध होनेवाली क्रिया को वस्तु का साध्य धर्म कहते हैं। जैसे—(रोटी) 'पकाना' क्रिया के लिए आग जलाना बेलना, सेकना आदि कई कार्य करने पड़ते हैं। यहाँ पकाना साध्य धर्म है।

'चकोर' चंद्रमा का प्रेमी है 'रवि' का नहीं। 'कमल' सूर्य का स्नेही है 'चंद्र' का नहीं, पर इनके विपरीत बातें कही गई हैं। 'रबिबंसी' में 'रबि' वंश को प्रकट करता है अतः विरोध का परिहार हो जाता है। 'रामचंद्र' में 'चंद्र' नाम का अंश है इसलिए विरोध नहीं रह जाता। इस प्रकार 'विरोधाभास' हुआ। 'चकोर' जाति है, 'रवि' द्रव्य है इससे जाति का द्रव्य से विरोध कहा जायगा। 'चंद्र' द्रव्य है और 'कमल' जाति है इससे जाति का द्रव्य से यहाँ भी विरोध है।

(२) विषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
केसव जीवनहार को दुख असेष हरि लेति॥

'बिषमय' (जहरीली) का 'अमृत' से विरोध है। जो गोदावरी विषैली है वह अमृत का फल कैसे देगी। फिर जो 'जीवन' (प्राण) हरण करनेवाला है उसका दुःख क्यों हरेगी। 'विषमय' गुण है और 'अमृत' द्रव्य है इससे गुण का द्रव्य से विरोध हुआ। 'जीवनहार' विशेषण है, गुण है और 'दुःख हर लेना' क्रिया है इससे गुण का क्रिया से विरोध है। किंतु 'विष' का अर्थ 'जल' लिया गया है और 'अमृत' का अर्थ 'देवता' है; इस प्रकार विरोध का परिहार हो जाता है। ऐसे ही 'जीवन' का अर्थ 'जल' होने से दूसरे स्थान पर भी विरोध नहीं रह जाता। अतः विरोध का आभास मात्र है।

सूचना—इस अलंकार में प्रायः दो अर्थवाले शब्द प्रयुक्त होते हैं। एक अर्थ से विरोध लगता है, पर दूसरे अर्थ से विरोध का परिहार हो जाता है। स्मरण रखना चाहिए कि जिस अर्थ से विरोध होता है उसी के अनुसार देखना चाहिए कि किससे किस का विरोध है। विरोध के परिहार के लिए जो अर्थ लिया जाता है

उसमें किससे किसका विरोध है देखने से भ्रांति हो जायगी। जैसे, पहले उदाहरण में 'रविवंशी' विशेषण अर्थात् गुण है अतः यह नहीं कह सकते कि जाति का गुण से विरोध है।

(१५) विभावना

'जहँ कारन अरु कार्य को, बरनन होय बिचित्र'

जहाँ कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय।

'विभावना' शब्द का अर्थ है—'विशेष प्रकार की कल्पना'। इस अलंकार में कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारिक कल्पना की जाती है। यह चमत्कारिक कल्पना कारण के अभाव की होती है। विभावना के भेदों में कारण या अभाव किसी-न-किसी प्रकार बराबर रहता है।

उदाहरण—(दोहा)

सुनत लखत श्रुति नैन बिन रसना[1] बिन रस लेत।
बास नासिका बिन लहै परसै बिना निकेत[2]॥

श्रुति (कान) आदि कारणों के अभाव का कथन करके सुनना आदि कार्यों की चमत्कारपूर्ण कल्पना की गई है।

इसके छह प्रकार होते हैं।

प्रथम विभावना

'बिना हेतु जहँ बरनिये प्रगट होत है काज'

जहाँ कारण के अभाव में भी कार्य हो जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन[3] रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी[4] बकता बड़ जोगी।

'पद' आदि कारणों के अभाव में 'चलना' आदि कार्यों का होना कहा गया है।

---

१ जीभ। २ घर, स्थान। ३ मुख। ४ वाणी।

द्वितीय विभावना

'जहाँ हेतु पूरन नहीं उपजत है पै काज'

जहाँ अपूर्ण कारण से ही कार्य उत्पन्न हो जाय ।

उदाहरण—(अर्धाली)

काम कुसुम-धनु सायक लीन्हें ।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें ॥

समस्त भुवनों को अपने वश में करने के लिए फूल के धनुष-बाण अपूर्ण कारण हैं । कारण का अपूर्ण होना ही कारण का अभाव है ।

तृतीय विभावना

'कारण प्रतिबंधक रहै होय काज की सिद्धि'

जहाँ कारण का प्रतिबंध करनेवाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाय । कारण के लिए प्रतिबंध ही उसका अभाव है ।

उदाहरण—(अर्धाली)

रखवारे हति बिपिन उजारा ।
देखत तोहिं अछय[1] जेइ मारा ॥

'रक्षक' प्रतिबंध के होते हुए भी वाटिका का उजाड़ना कहा गया है ।

चतुर्थ विभावना

'जहँ अहेतु तें होति है कारज की उत्पत्ति'

जहाँ अहेतु (जो वास्तविक कारण नहीं है उस) से कार्य की उत्पत्ति हो । अन्य हेतु होने से वास्तविक कारण का अभाव है ।

उदाहरण—(दोहा)

हँसत बाल के बदन में यौं छबि कछू अतूल[2] ।
फूली चंपक बेलि[3] तें झरत चमेली फूल ॥

---

१ अक्षयकुमार । २ जिसकी समानता न हो, अनूप । ३ चंपे की लता (स्त्री)।

'चंपक लता से चमेली के फूलों का झड़ना' अहेतु से कार्योत्पत्ति कही गई है।

पंचम विभावना

'कारन तें उपजै जहाँ कारज परम विरुद्ध'

जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो। विरुद्ध कारण वास्तविक कारण का अभाव है।

उदाहरण—(कवित्त)

ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक[1] में
जा दिन सिवाजी गाजी[2] नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार[3] तजि अरिन की
दार गन[4] भागत न बार[5] परखत हैं।
छूटे बार[6] बार[7] छूटे बारन तें लाल[8] देखि
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहि बैरिन के झुंडन में
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

चौथे चरण में बादलों से आग बरसना विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति कही गई है।

षष्ठ विभावना

'जहाँ काज तें हेतु को बरनत प्रगट प्रकास'

जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति कही जाय। कार्य का, कारत्व का कारण बन जाना मूल कारण का अभाव ही तो है।

उदाहरण (दोहा)

भयो सिंधु तें बिधु[9] सुकबि बरनत बिना बिचार।
उपज्यौ तुव मुख इंदु तें प्रेम पयोधि अपार॥

१ संसार। २ धर्मयुद्ध-वीर। ३ महल। ४ स्त्रियाँ। ५ दिन (मूहूर्त)। ६ द्वार (घर बार)। ७ बाल (केश)। ८ रत्न। ९ चंद्रमा।

इंदु (चंद्र) कार्य से पयोधि (समुद्र) कारण की उत्पत्ति कही गई है। (वस्तुतः चंद्रमा समुद्र से निकला है पर यहाँ उसके विपरीत कथन है)।

(१६) अत्युक्ति

'योग्य व्यक्ति की योग्यता अति करि बरनी जाय'

जहाँ रोचकता के लिए किसी का बहुत बढ़ाकर वर्णन किया जाय। 'अत्युक्ति' शब्द का अर्थ है 'अतिपूर्ण कथन'। यह कथन इतना बढ़ा होता है कि मिथ्या भासने लगता है। अत्युक्ति सभी प्रकार की हो सकती है, पर प्रायः शूरता, उदारता और सुंदरता की ही अत्युक्ति साहित्य ग्रंथों में पाई जाती है। यहाँ पर केवल शूरता और उदारता की अत्युक्ति के उदाहरण दिए जाते हैं।

शौर्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

साजि चतुरंग सैन अंग में उमंग धरि
सरजा[1] सिवाजी जंग[2] जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद[3] नगारन के
नदी नद मद गैवरन[4] के रलत[5] है।
ऐल फैल[6] खैल भैल[7] खलक[8] में गैल गैल
गजन की ठेल पेल सैल उसलत[9] है।
तारा सो तरनि[10] धूरि धारा में लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार[11] यों हलत है॥

---

१ शिवाजी की उपाधि (शरजाह)। २ युद्ध। ३ बेहद, अत्यधिक। ४ (गजवर) श्रेष्ठ हाथी। ५ बह चलते हैं। ६ समूह (सेना) के फैलने से। ७ खलबली। ८ संसार। ९ पहाड़ उखड़ जाते हैं। १० सूर्य। ११ समुद्र।

हाथियों के मद से नदी बहना, पहाड़ों का उखड़-पखड़ जाना, धूल उड़ने से सूर्य का तारे के समान दिखाई देना और समुद्र का थाली पर रखे पारे की तरह हिलना आदि—मिथ्यापूर्ण वर्णन— शूरता को बढ़ाकर दिखाने के लिए किए गए हैं।

औदार्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित)

संपति सुमेर की कुबेर को जो पावै वाहि
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहै पदमाकर सु हेम[1] हय[2] हाथिन के
हलके[3] हजारन के वितरि[4] विचारै ना।
गज गंज बकस[5] महीप रघुनाथराव
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही[6]
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

यहाँ पर पार्वती का गणेश को गोद से न उतारने का कारण राजा का हाथी के धोखे में उन्हें भी दान कर देना बताया गया है, जो मिथ्यापूर्ण है।

सूचना—जहाँ पर कहा जाता है कि 'डर को भी डर लगता है' 'लज्जा को भी लज्जा आती है', 'क्रोध को भी क्रोध आ गया' आदि वहाँ भी अत्युक्ति ही समझनी चाहिए।

---

१ सोना। २ घोड़ा। ३ समूह। ४ विभाजित करना। ५ हाथियों का समूह दान करनेवाले। ६ पार्वती गणेश की देख भाल कर रही हैं।

चतुर्थ प्रकाश

गुण दोष

गुण

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए उसमें कुछ गुण रखे जाते हैं। अलंकारों के द्वारा काव्य की बाहरी शोभा बढ़ती है, पर गुण के द्वारा काव्य में आंतरिक सुंदरता आती है। इसलिए यदि कविता में अलंकार न भी हों तो भी काम चल सकता है, पर गुणों के न रहने से कविता किसी काम की नहीं रह जायगी। वस्तुतः गुण आंतरिक भावों के पोषक होकर कविता में आते हैं। मान लीजिए कोई किसी से प्रेमपूर्ण बातें कर रहा है, उस समय वह कठोर शब्दों का व्यवहार न करेगा। 'मीठी मीठी' बातें करेगा। इसी प्रकार जब कोई किसी पर क्रुद्ध होगा तो उससे 'मीठी मीठी' बातें न करके स्वभावतः 'कड़े शब्दों' का व्यवहार करेगा। इसी प्रकार यदि कोई बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किए परस्पर बातचीत करता है तो 'सीधेसादे' शब्दों का व्यवहार करता है। लेख लिखते समय या व्याख्यान देते समय चाहे कोई शब्दों को ढूँढ़ ढूँढ़कर प्रयुक्त करे पर बातचीत करते समय कोई इस फेर में नहीं पड़ता। मुख्यतः इन्हीं तीन बातों का ध्यान करके काव्य के गुणों को भली भाँति हृदयंगम किया जा सकता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है—'रस काव्य की आत्मा है' इसलिए गुणों का प्रयोग भी इन्हीं रसों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जितने कोमल भावों वाले रस हैं उनमें 'मधुर' शब्दों का प्रयोग करके उनकी कोमलता सुरक्षित रखी जाती है।

इसी प्रकार जितने रस उग्र भावों वाले हैं उनमें 'कठोर' शब्दों को उपयोग में लाया जाता है और उनकी उग्रता का ठीक ठीक प्रदर्शन किया जाता है। इसके अतिरिक्त पहले यह भी कहा गया है कि कविता द्वारा वस्तुतः हृदय का भाव दूसरों पर अभिव्यक्त किया जाता है, इसलिए यदि कविता में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो अप्रचलित हैं तो कविता में क्लिष्टता आ जायगी और कविता का वास्तविक उद्देश्य सुरक्षित न रह सकेगा। जिस कविता को कोई स्वयम् हो करे और स्वयम् ही समझे उसके करने से संसार का क्या लाभ! इसलिए कविता में सरल, सीधे सादे, बहुप्रचलित शब्दों का ही अधिकांश में प्रयोग होना चाहिए इससे उसकी ग्राहकता बढ़ती है। इन बातों का विचार करके तीन गुणों का विधान किया गया है। इनके नाम हैं—(१) माधुर्य, (२) ओज और (३) प्रसाद।

माधुर्य गुण

जहाँ ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म वर्णों द्वारा, ङ, ञ, ण, न, म से युक्त और अनुस्वारवाले अक्षरों की अधिकता से, रेफ और लंबे समासों को त्याग कर छोटे छोटे समासों के व्यवहार से मधुर रचना की गई हो वहाँ 'माधुर्य गुण' माना जाता है। इस गुण का प्रयोग शृंगार, करुण और शांत रसों में विशेष रूप से और हास्य एवम् अद्भुतमें सामान्यतः आवश्यक है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंद मंद चढ़ि चल्यौ चैत निसि चंद चारु
मंद मंद चाँदनी पसारत[1] लतन तें।

---

१ फैलाता है।

मंद मंद जमुना तरंगिनि[१] हिलोरै लेति
मंद मंद मोद[२] मंजु मल्लिका सुमन[३] तें।
देव कबि मंद मंद सीतल सुगंध पौन[४]
देखि छबि छीजत मनोज छन छन[५] तें।
मंद मंद मुरली बजावत अधर धरे
मंद मंद निकस्यौ मुकुंद[६] मधुबन तें॥

मधुर एवम् सानुस्वार वर्णों की अधिकता है। शब्दों से माधुर्य गुण टपका पड़ रहा है।

ओज गुण

जहाँ द्वित्व-वर्णों (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प), संयुक्त वर्णों (क्ख, ग्घ, च्छ, ज्झ, ट्ठ, ड्ढ, त्थ' द्ध' प्फ, ब्भ), रेफ (र्क, र्च आदि) एवम् रकार संयुक्त वर्णों (क्र, प्र, द्र,), ट, ठ, ड, ढ से बने हुए शब्दों की अधिकता और लंबे लंबे समासों द्वारा कविता की रचना की जाय वहाँ 'ओज' गुण होता है। यह गुण वीर एवम् रौद्र रस में विशेष रूप से तथा बीभत्स एवम् भयानक रस में सामान्य रूप से आवश्यक होता है।

उदाहरण (कवित्त)

बारि[७] टारि डारौं कुंभकर्नहि बिदार डारौं[८]
मारौं मेघनादैं आजु यौं बल अनंत[९] हौं।
कहै पदमाकर त्रिकूटहु[१०] कों ढाहि डारौं
डारत करेई जातुधानन को अंत[११] हौं।

---

१ नदी। २ सुगंध। ३ वेले का फूल। ४ (पवन) वायु। ५ क्षण क्षण की शोभा से कामदेव लज्जित होता है। ६ श्रीकृष्ण। ७ जल (समुद्र)। ८ फाड़ डालूँ। ९ अत्यंत बलशाली। १० लंका की तीन ऊँची चोटियाँ (सुबेला, लंका, निकुंभिला)। ११ यातुधानों (राक्षसों) का अंत कर देता हूँ।

अच्छहि[1] निरच्छ[2] कपि रुच्छ[3] ह्वै उचारौं[4] इमि
तो से तिच्छ[5] तुच्छन को कछुवै न गंत[6] हौं।
जारि डारौं लंकहिं उजारि डारौं उपबन
फारि डारौं रावन को तौ मैं हनुमंत हौं॥

रचना ओज गुण उत्पन्न करनेवाले पूर्वोक्त प्रकार के वर्णों द्वारा की गई है।

प्रसाद गुण

जहाँ सरल, सीधे सादे, सुबोध शब्दों द्वारा वाक्यरचना की जाती है वहाँ 'प्रसाद गुण' होता है। इस गुण का उपयोग सभी रसों में होता है। वस्तुतः माधुर्य और ओज गुण शब्दों की बनावट से संबंध रखते हैं; पर प्रसाद गुण उनके अर्थ (आंतरिक बनावट से संबंध रखता है। इसलिए इसका प्रयोग सभी रसों के लिए आवश्यक है।

उदाहरण—

हे जन्मभूमि जननी मैं तुझको आदरूँगा।
निज बाहुबल से तेरे संकट सभी हरूंगा।
निज बुद्धि वाक्य बल से साहित्य घर भरूंगा।
संपत्ति अपनी सारी चरणों पै ले धरूँगा।
तन मन वचन से धन से सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिए जिऊँगा तेरे लिए मरूँगा॥

सभी शब्द सरल और सुबोध हैं। अतः इसमें पूर्ण 'प्रसाद गुण' है। सूचना—माधुर्य में चित्त द्रवीभूत होता है, ओज में चित्त दीप्त या उत्तेजित होता है। इन गुणों में यह विशेषता नियत रहती है। प्रसाद में नियत विशेषता नहीं रहती। उसमें

---

१ अक्षयकुमार के प्रति। २ मैं रक्षाहीन बंदर। ३ रुष्ट। ४ कहता हूँ। ५ तीक्ष्ण। ६ कुछ नहीं गिनता।

चित्त द्रवीभूत किया जा सकता है और उत्तेजित भी। यह दोनों को यथावसर ग्रहण कर सकता है। यह उभयविध विशेषता वाला है। सूखे काठ की भाँति उसमें गीलापन भी हो सकता है और जलना भी हो सकता है। तेजी से हो सकता है।

दोष

काव्य के सभी गुणों से युक्त कविता होने की अपेक्षा उसका सब प्रकार से निर्दोष होना अधिक आवश्यक है; क्योंकि विष की एक बूँद भी अमृत के घड़े को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त है। दोषों के आ जाने से कविता के वास्तविक 'रस' का आनंद उठाने में पाठक या श्रोता को बाधा पहुँचती है। इससे 'रस' की हानि हो जाती है और मुख्य अर्थ कुछ का कुछ समझ लिया जाता है; इसलिए दोषों से कविता को मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है। यों तो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी का निर्दोष होना असंभव है, फिर भी दोषों से भरसक बचने का प्रयत्न कवि को करना ही पड़ता है।

साहित्यशास्त्रकारों ने बहुत से दोष गिनाए हैं और उनके कई विभाग भी किए हैं, पर यहाँ पर उन सबका उल्लेख न करके दोषों का मूल स्वरूप संक्षेप में कहा जाता है। तदनंतर दो चार उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट कर दिया जायगा।

कविता में जिन शब्दों का चुनाव किया जाता है वे प्रसंग के अनुकूल होते हैं तो कानों को रुचते हैं, प्रतिकूल होते हैं तो कानों को खटकते हैं। जो रचना कानों को खटकती है उसके इस दोष को 'श्रुतिकटु' दोष कहते हैं। इसी प्रकार कविता में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि व्याकरण के विरुद्ध, अप्रयुक्त, अश्लील, ग्राम्य आदि शब्दों का भी व्यवहार न किया जाय। कोई ऐसा शब्द न रखा जाय जो कवि के तात्पर्य को ठीक ठीक

प्रदर्शित न करता हो अथवा जिसके अर्थ में ही संदेह हो। यही नहीं, जिस रस में जैसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए उनका प्रयोग न होना, कुछ शब्दों की कमी रह जाना अथवा व्यर्थ के शब्दों को भरती कर देना भी अनुचित है। पिंगल के नियमों का पालन न कर छंदोभंग कर बैठना, देश, काल और शास्त्रों का ध्यान न रखकर मनमानी बात कह देना, एक बार कही बात की पुनरुक्ति करते रहना, पहले जो बात कह आए हैं उसके विरुद्ध कोई बात कह बैठना, अथवा जिस क्रम से जिस प्रसंग का वर्णन कर रहे हैं उस क्रम का अंत तक निर्वाह न करना आदि भी दोषों के अंतर्गत आते हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

उदाहरण—

(१) पर क्या न विषयोत्कृष्टता[1] करती विचारोत्कृष्टता[2] ?

यहाँ पर 'विषयोत्कृष्टता' और 'विचारोत्कृष्टता' शब्द केवल कान को ही नहीं खटकते, जीभ को भी खटकते हैं। इनका उच्चारण करने में जीभ को भी कष्ट प्रतीत होता है। यह 'श्रुतिकटु दोष' है।

(२) गत जब रजनी[3] हो पूर्व संध्या बनी हो।
उडुगण[4] क्षय[5] भी हों दीखते भी कहीं हों।
मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा।
तब पिक[6] करती तू शब्द प्रारंभ तेरा॥

'तेरा' के स्थान पर 'अपना' होना चाहिए था। यह 'व्याकरण-विरुद्ध दोष' है।

१ विषय की उत्तमता। २ विचार की उत्तमता। ३ रात। ४ तारे। ५ नष्ट (डूब गए हों)। ६ कोयल।

(३) सचिव बैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस[1]।
राज धर्म तनु तीन कर होइ बेगि ही[2] नास॥

पहले सचिव (मंत्री), वैद (वैद्य) और गुरु तीन व्यक्ति कहे गए हैं। इन्हीं के क्रम से राज, तनु (शरीर) और धर्म कहना चाहिए था। पर ऐसा न होने से क्रमभंग हो गया है। इसे 'अक्रमत्व' दोष कहते हैं।

(४) केसरि तिलक ललाट[3] बेसरि बानक[4] मुख बेस[5]।
सुरँग ओढ़नी सीस बनसीबट[6] बिथुरे केस[7]॥

इस दोहे का प्रथम चरण नियमानुसार 'वेसरि' शब्द के 'वे' के पश्चात् पूर्ण होता है, वहाँ पर विश्राम होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में दोहे का तीसरा चरण 'बनसी' शब्द के 'वन' के पश्चात् पूरा होता है, वहाँ पर भी विश्राम नहीं है। इसे 'हतवृत्तत्व या छंदोभंग' दोष कहते हैं।

(५) जो नर मेरा मित्र था है वह कहाँ मनुष्य।

इसमें एक ही पद्य में 'नर' और 'मनुष्य' एकार्थवाची शब्द दो बार व्यर्थ प्रयुक्त हुए हैं, केवल एक ही से काम चल सकता था। इसे 'पुनरुक्ति दोष' कहते हैं।

विस्तारभय से अधिक दोषों के उदाहरण नहीं दिए जाते।

---

१ भय के कारण। २ शीघ्र ही। ३ मस्तक पर केसर का टीका। ४ बुलाक की छटा। ५ मुख पर अत्यंत शोभित है। ६ वंशीवट (वृंदावन का एक विशेष स्थान)। ७ बाल।

पंचम प्रकाश

पिंगल

गद्य और पद्य

प्रत्येक भाषा में काव्यरचना दो प्रकार के वाक्यों द्वारा हो सकती है; (१) गद्य और (२) पद्य से। मात्रा एवम् वर्ण तथा गति, प्रवाहादि से अनियमित, किंतु व्याकरण से व्यवस्थित शब्द-योजना को 'गद्य' कहते हैं। साधारण बोलचाल में अधिकतर गद्य का ही प्रयोग होता है, इसके विपरीत मात्राओं एवम् वर्णों की संख्या अथवा उनके क्रम से नियमित तथा विराम, गति, प्रवाहादि से व्यवस्थित शब्दयोजना से युक्त पद (चरण) जिस रचना में हों उसको 'पद्य' कहते हैं। इसमें यदि व्याकरण की दृष्टि से शब्दक्रम में हेर फेर भी हो जाय तो दोष नहीं माना जाता। जैसे—

जड़ चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार[1]।
संत हंस गुन गहहिं पय[2] परिहरि बारि बिकार[3]॥

यह पद्यबद्ध रचना है, क्योंकि इसमें मात्राओं की संख्या नियमित है एवम् गति आदि से व्यवस्थित है; साथ ही शब्द-योजना में व्याकरण के क्रम का ध्यान भी नहीं रखा गया। व्याकरण के क्रम से व्यवस्थित होने पर इसका पद्यरूप यों होगा—'करतार (ने) बिस्व (को) जड़ चेतन (और) गुन-दोष मय कीन्ह; (किंतु) संत हंस बारि बिकार परिहरि गुन पय गहहिं।' इस वाक्य में अक्षरों अथवा मात्राओं की संख्या का कोई नियम नहीं है, किंतु व्याकरण के नियमानुसार आदि में

---

१ ब्रह्मा। २ दूध। ३ जल रूपी विकार (दोष)।

कर्त्ता, अंत में क्रिया, बीच में अन्य शब्द—कारक एवम् विशेषणादि—यथास्थान रखे गए हैं।

छंदःशास्त्र

'छंद' शब्द 'पद्य' का समानार्थवाची है। यह शब्द भी 'पद्य' की ही भाँति प्रचलित है। इसका अर्थ है बंधन। जिस शास्त्र में पद्यरचना के नियमों तथा लक्षणों एवम् उदाहरणों के साथ साथ पद्य के भेदोपभेदों का सविस्तर विवेचन किया गया हो उसे 'छंदःशास्त्र' कहते हैं। छंदःशास्त्र के आदि-प्रवर्तक शेषावतार महर्षि पिंगल माने जाते हैं। अतएव इस शास्त्र का नामांतर 'पिंगल' भी है।

छंदःशास्त्र की उपयोगिता

छंदःशास्त्र भी काव्य का मुख्य अंग है। ऋषि महर्षियों ने इस शास्त्र को यहाँ तक महत्ता दी है कि यह वेद के 'षडंगों'* में गिना जाता है और उसके बिना वेद का ज्ञान अपूर्ण समझा जाता है। वास्तव में पद्यरचना की विशेषताओं को ध्यान में रखकर देखा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति अथवा अनौचित्य नहीं है। पद्य में पदयोजना लयपूर्ण होने के कारण श्रुतिप्रिय एवम् मनोहर हो जाती है। इसमें संक्षेप में बहुत सी बातों का समावेश किया जा सकता है। उक्त दोनों कारणों से पद्य की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि पद्यबद्ध रचना के पढ़ने में मन अधिक लगता है और किसी भी विषय को कंठस्थ करने में सुविधा रहती है, इसी कारण हम संस्कृत में पद्य की इतनी प्रचुरता पाते हैं; श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण आदि सभी छंदोबद्ध हैं। व्याकरण, कोश, वैद्यक, ज्योतिष आदि सभी विषयों के

---

* वेद के छह अंग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।

ग्रंथ पद्य में उपलब्ध होते हैं। यदि हिंदी का यह साहित्य पद्यबद्ध न होता तो आज दिन गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास, केशवदास आदि अनेक रचयिताओं को कोई कैसे जानता। छंदों के संपुट में बंद रहने के कारण इनकी रचना जनता के जिह्वाग्र में सुरक्षित रह सकी। हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियाँ नष्ट हो गईं, समय के प्रवाह में बह गईं, छीन ली गईं, भस्म कर दी गईं, किंतु कर्णपरंपरागत रचना अभी तक ज्यों की त्यों चली आ रही है। इसीलिए प्राचीन साहित्य में गद्यरचना का एक प्रकार से अभाव है। जो कुछ है वह भी नगण्य है। अतएव छंदःशास्त्र काव्य का प्रधान अंग है, इसमें संदेह नहीं।

लघु-गुरु-नियम

मात्राभेद से 'वर्ण' या 'अक्षर' दो प्रकार के होते हैं; ह्रस्व एवम् दीर्घ। वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है उसे 'मात्रा' कहते हैं। अ, इ, उ, ऋ तथा इनसे युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी एक मात्रा मानी जाती है: और आ, ई, ऊ ए, ऐ, ओ, औ तथा इनसे युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं, क्योंकि इनके उच्चारण में एकमात्रिक अक्षरों से दुगुना समय लगता है। व्याकरण में एकमात्रिक अक्षरों को 'ह्रस्व वर्ण' और द्विमात्रिक को 'दीर्घ वर्ण' कहते हैं। 'ह्रस्व' और 'दीर्घ' को 'पिंगलशास्त्र' में 'लघु' और 'गुरु' कहते हैं। 'लघु वर्ण' का चिह्न खड़ी पाई (।) और 'गुरु वर्ण' का चिह्न वक्र रेखा (ऽ) है। संक्षेप में लघु के लिए 'ल' और गुरु के लिए 'ग' भी

लिखा जाता है। लघु गुरु के विषय में निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।*

१—लघु वर्ण एकमात्रिक और गुरु वर्ण द्विमात्रिक होते हैं; जैसे 'रमापति' शब्द में 'र', 'प' और 'ति' ह्रस्व या लघु अक्षर होने के कारण एकमात्रिक हैं और 'मा' दीर्घ या गुरु होने के कारण द्विमात्रिक है। इस प्रकार उक्त चार अक्षरों के शब्द में पाँच मात्राएँ हैं।

२—सानुस्वार और सविसर्ग वर्ण भी दीर्घ या गुरु माने जाते हैं; जैसे—कंज, पंक और दुःख में 'कं', 'पं' और 'दुः' गुरु वर्ण हैं। सानुस्वार या सविसर्ग वर्ण यदि स्वयम् दीर्घ हों तो मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती; जैसे—'गांगेय' और 'हाः हाः' में 'गां' और 'हाः' स्वयम् गुरु वर्ण हैं, विसर्ग या अनुस्वार के कारण इन पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। परंतु जिस लघु वर्ण के ऊपर अर्द्ध अनुस्वार या चंद्रबिंदु (ँ) हो उसकी एक ही मात्रा मानी जाती है; अतएव वह लघु ही गिना जाता है; जैसे—'हँसना' और 'फँसना' के 'हँ' तथा 'फँ' लघु वर्ण हैं।

३—संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण प्रायः दीर्घ माना जाता है; जैसे—हट्ट, युक्त, अक्षर, वर्ण में 'ट्ट', 'क्त', 'क्ष' और 'र्ण' संयुक्त हैं, इस कारण इनके पूर्ववर्ण 'ह' 'यु', 'अ' और 'व' आघात पड़ने से 'द्विमात्रिक' या 'गुरु' माने गए हैं। यदि किसी सामासिक पद के उत्तर पद का आद्यक्षर संयुक्त हो तो

---

* अधोलिखित को कंठस्थ कर लेने से 'लघु गुरु' के नियम स्मरण रखने में सुविधा होगी—

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरु, पादांतस्थं विकल्पेन॥

उसके पूर्वपद का अंतिम अक्षर विकल्प से—कवि या पाठक के सुविधानुसार—लघु या गुरु पढ़ा जा सकता है; जैसे 'शब्द-क्रम' और 'कर्तव्यज्ञान' में 'क्र' तथा 'ज्ञ' के पूर्व के अक्षर 'ब्द' एवम् 'व्य' लघु भी पढ़े जा सकते हैं और गुरु भी।

४—कहीं-कहीं संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण दीर्घ नहीं भी माना जाता; जैसे—तुम्हारा, कुल्हाड़ा में 'तु' और 'कु'। क्योंकि संयुक्त होने पर भी पूर्व वर्ण पर जोर नहीं पड़ता। संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण यदि दीर्घ हो तो मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती।

५—हलंत के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाता है और हलंत वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती; जैसे राजन्, श्रीमन् में 'ज' तथा 'म' गुरु (द्विमात्रिक) हैं; और 'न्' की मात्रा नहीं गिनी जायगी।

६—कहीं कहीं लय के अनुसार दीर्घ वर्ण को ह्रस्व पढ़ना पड़ता है। ऐसे स्थान पर वह वर्ण एकमात्रिक या लघु ही माना जायगा। जैसे—

बिनु जर[1] जारि करइ सोइ छारा[2]।
जौ सुत कहउँ संग मोहिं लेहू।
धनुष यज्ञ जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखी लेइ आई।

इनमें 'सोइ', 'मोहिं', 'जेहि' और 'लेइ' के 'सो', 'मो', 'जे' एवम् 'ले' को दीर्घ होते हुए भी लघु पढ़ना पड़ेगा; गुरु पढ़ने से प्रत्येक पद में सोलह के स्थान पर सत्रह मात्राएँ हो जायँगी और लय में भी व्याघात पड़ेगा

१ जड़। २ राख, धूल।

७—संस्कृत पद्यों में तथा हिंदी के वर्णिक वृत्तों में चरणांत का अंतिम लघु वर्ण भी विकल्प से—आवश्यकतानुसार—गुरु माना जाता है; जैसे—

दुखित हैं धनहीन धनी सुखी।
यह विचार परिष्कृत[1] है यदि।
मन युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई?
विभवता[2] भव ताप विधायिनी[3]॥

दूसरे चरण के अंतिम शब्द 'यदि' का अंतिम अक्षर 'दि' लघु होते हुए भी छंद के नियम के अनुसार दीर्घ माना जायगा।

सारांश यह कि लघु-गुरु के उक्त नियमों के होते हुए भी छंदःशास्त्र में 'लय' की ही प्रधानता है। जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ जाती है वहाँ लघु के स्थान पर गुरु और गुरु के स्थान पर लघु पढ़ना ही पड़ता है।

गणविचार

छंद के भेदों, विशेष रूप से वर्णवृत्तों का विवेचन करने के पूर्व 'गणों' के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। तीन वर्णों का 'गण' होता है। 'वर्ण' लघु गुरु के भेद से दो प्रकार के होते हैं, इसलिए तीन तीन वर्णों के आठ गण होंगे। उनके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

संख्या	गण	रूप	संकेत	उदाहरण
१	मगण	SSS	म	भंडारी
२	नगण	|||	न	भरत
३	भगण	S||	भ	भारत
४	यगण	|SS	य	भरोसा

१ ठीक। २ ऐश्वर्य, वैभव। ३ सांसारिक कष्ट देनेवाली।

५	जगण	ISI	ज	भविष्य
६	रगण	SIS	र	भारती
७	सगण	IIS	स	भगिनी
८	तगण	SSI	त	भंडार

पिंगलशास्त्र में १० अक्षर संक्षेप में गणादि एवम् लघु गुरु के सूचक हैं—म, न, भ, य, ज, र, स, त, ल और ग। आजकल यह सूत्र चल पड़ा है, जिससे कंठस्थ करने एवम् इनके रूपों को समझने समझाने में अत्यंत सुविधा होती है—

'यमाताराजभानसलगा'

इस सूत्र से पूर्व आठ अक्षर आठों गणों के सांकेतिक वर्ण हैं, शेष 'ल' से 'लघु' और 'ग' से गुरु का बोध होता है। इसी सूत्र में सबके रूप भी प्रत्यक्ष हैं। 'यगण' का रूप जानना हो तो 'य' तथा उसके आगे के दो वर्णों के मिलाने से वह गण बन जायगा—'यमाता (ISS)'। यही 'यगण' का रूप है। इसी प्रकार 'सगण' का रूप होगा 'सलगा (IIS)'। उसी क्रम से और भी समझ लीजिए। 'ल' ह्रस्व है अतएव 'लघु' है और 'ग' दीर्घ वर्ण होने से 'गुरु' है।

गणों के देवता और फल

गणों के देवता और उनके फल आदि के विषय में पिंगल-शास्त्र में बहुत कुछ विवेचन किया गया है। संक्षेप में 'म,न,भ,य' चार गण शुभ माने जाते हैं और शेष चार 'ज,र,स,त' अशुभ। देवविषयक काव्यों में तो शुभाशुभ का विचार ही नहीं रह जाता किंतु नरविषयक काव्यों के प्रारंभ में अशुभ गण वर्जित हैं। यह नियम छंद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरों के लिए ही है, अन्यत्र नहीं।

गणवृत्तों में गणदोष नहीं माना जाता, क्योंकि वहाँ जिस गण का विधान किया जाता है वह गण शुभ हो चाहे अशुभ लाना ही पड़ता है। जैसे, दुर्मिल सवैया आठ सगणों का होता है। वहाँ आरंभ में अशुभ 'सगण' का लाना अनिवार्य है। ऐसे अवसर पर ध्यान यही रखना चाहिए कि प्रारंभ में यदि 'ज, र, स, त' लाने ही पड़ें तो यथासंभव देववाची मंगलात्मक शब्द रखे जायँ। मात्रिक छंदों के प्रारंभ में तो इनका प्रयोग बचाना ही चाहिए। कुगण के पड़ने से छंद की रोचकता नष्ट हो जाती है। अतएव काव्यरचना में 'द्विगण' का भी विचार करते हैं। एक गण के साथ दूसरे विशेष गण के संयोग से छंद की रोचकता की कई अंशों में रक्षा की जा सकती है। संक्षेप में मगण और नगण परस्पर मित्र हैं, भगण यगण दास हैं, जगण-तगण उदासीन तथा रगण सगण शत्रु हैं। ये अपने मित्र आदि नामों के अनुसार ही फल देते हैं।

शुभाशुभ वर्ण एवम् दग्धाक्षर

वर्णों में शुभाशुभ का ध्यान रखना पड़ता है। स्वर सभी शुभ माने गए हैं। व्यंजनों में 'क, ख, ग, घ, च, छ, ज, त, द, ध, न, य, श, स, ये शुभ हैं, शेष अशुभ। अशुभ वर्णों में भी 'झ, ह, र, भ, ष' ये पाँच तो नितांत दूषित हैं। इनको 'दग्धाक्षर' कहते हैं। पद्य के आरंभ में इनका लाना एकदम वर्जित है। किंतु यदि ये 'गुरु' होकर आएँ अथवा किसी देवता या मंगलवाची शब्द के आरंभ में हों तो उक्त दोष का परिहार हो जाता है।

गति, यति

प्रत्येक छंद की 'लय' होती है, उसे 'गति' या 'प्रवाह' भी कहते हैं। छंद की रचना में 'गति' या 'लय' का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है, पर इसके लिए कोई विशेष नियम

नहीं है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही आश्रित है। लक्षण के अनुसार शुद्ध करते हुए भी गति का ध्यान न रखने से छंद दोषयुक्त हो जाता है; जैसे—

बरु नरक कर बास भल ताता।
जनि दुष्ट संग देइ बिधाता॥

चौपाई के लक्षण के अनुसार १६ मात्राएँ होने पर भी लय का अभाव है, पढ़ने में रुकावट आ जाती है, पाठ धारावाहिक गति से नहीं चलता; अतः दूषित है। ऐसे स्थलों पर जहाँ गति या प्रवाह ठीक न हो वहाँ 'गतिभंग' दोष माना जाता है। उक्त चौपाई को लययुक्त करने के लिए रूप यों करना होगा—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

इसके सिवा प्रत्येक पद्य में चार चरण होते हैं। उनमें से एक चरण का शब्द कटकर या टूटकर दूसरे चरण में लगने से भी पद्य दूषित होता है, ऐसे दोष को 'यतिभंग' कहते हैं। 'यति' का अर्थ है विश्राम या रुकने का स्थान।

उदाहरण—(दोहा)

दोउ समाज निमिराज[1] रघु राज[2] नहाने प्रात।
बैठे सब बट-बिटप तर[3], मन मलीन कृस गात[4]॥

'रघुराज' शब्द पहले और दूसरे चरणों में कटकर 'रघु' एक ओर रह जाता है और 'राज' दूसरी ओर चला जाता है। यही 'यतिभंग' है।

---

१. जनक। २. राम। ३. बरगद के पेड़ के नीचे। ४. दुर्बल शरीर।

छंदों के भेदोपभेद

छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) वैदिक और (२) लौकिक। वैदिक छंदों का हिंदी भाषा में क्या प्रयोजन। लौकिक छंद के पुनः दो भेद होते हैं--(१) मात्रिक अथवा जाति और (२) वर्णिक अथवा वृत्त। साधारणतः प्रत्येक छंद में चार 'चरण' होते हैं।* चरण को 'पद' अथवा 'पाद' भी कहते हैं। जिन छंदों के चरणों में मात्राओं की संख्या का नियम हो उन्हें मात्रिक छंद या जाति कहते हैं तथा जिनमें वर्णों की संख्या तथा लघु गुरु के क्रम का नियम हो उन्हें वर्णिक छंद या वृत्त कहते हैं। इनमें कुछ को छोड़कर प्रायः सबमें 'गणों' का उपयोग किया जाता है। मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छंद पुनः तीन तीन प्रकार के होते हैं--सम, अर्द्धसम और विषम।

(१) मात्रिक भेद

१—'मात्रिक सम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में मात्राओं' का क्रम समान हो; जैसे--चौपाई, हरिगीतिका, रोला आदि।

२—'मात्रिक अर्द्धसम' वे छंद हैं जिनके पहले और तीसरे चरणों में तथा दूसरे एवम् चौथे चरणों में बराबर मात्राएँ हों जैसे—दोहा, सोरठा, बरवै आदि।

३—'मात्रिक विषम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में मात्राओं का क्रम अलग अलग हो; जैसे—आर्या।

ऐसे भी मात्रिक छंद हिंदी में बहुत प्रचलित हैं जिनमें चार से अधिक चरण होते हैं। उन्हें भी 'मात्रिक विषम' छंदों

---

* कुछ ऐसे भी छंद होते हैं जिनमें चरण तो चार ही होते हैं पर वे लिखे दो ही पंक्तियों में जाते हैं; यथा—दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाला आदि। ऐसे छंदों की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं।

में ही गिनते हैं; अतएव 'मात्रिक विषम' छंद का व्यापक लक्षण यह होगा—जो छंद मात्रिक सम या मात्रिक अर्द्धसम न हों वे 'मात्रिक विषम' हैं; जैसे—कुंडलिया और छप्पय। ये दोनो छह-छह चरणों के छंद हैं और दो दो छंदों के मिश्रण से बने हैं। यही इनकी विषमता है।

मात्रिक सम छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। जिन छंदों के प्रत्येक चरण में ३२ या इससे कम मात्राएँ हों उन्हें 'साधारण' कहते हैं और इससे अधिक मात्रा-वाले छंद दंडक' कहलाते हैं।

वर्णिक भेद

१—'वर्णिक सम' छंद वे हैं जिनके चारो चरणों में 'वर्णों' या 'गणों का क्रम समान हो; जैसे—वसंततिलका, इंद्रवज्रा मालिनी, तोटक, दुर्मिल (सवैया) आदि।

२—'वर्णिक अर्द्धसम' छंद वे हैं जिनके पहले तीसरे तथा दूसरे चौथे चरणों में वर्णक्रम तथा संख्या समान हो।

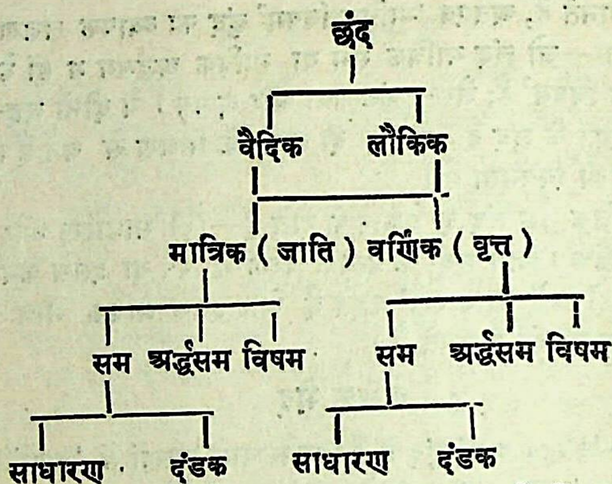
३—'वर्णिक विषम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में वर्ण-संख्या भिन्न भिन्न हो।*

वर्णिक सम के भी दो भेद होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। २६ वर्णों तक के वृत्त 'साधारण वृत्त'† कहलाते हैं और इससे अधिक वर्णवाले 'दंडक वृत्त' कहे जाते हैं। वर्णिक दंडकों में रूप घनाक्षरी, देव घनाक्षरी और मनहरण कवित्त बहुत प्रसिद्ध हैं।

---

* वर्णिक अर्द्धसम और वर्णिक विषम का प्रचार हिंदी में बहुत ही कम—नहीं के समान है।

† बाईस वर्णों से लेकर छब्बीस वर्णों तक के छंद 'सवैया' के नाम से प्रसिद्ध हैं।



मात्रिक छंद और वर्णिक छंद की पहचान के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

१—जिस छंद के चारो चरणों में वर्ण समान हों या समान वर्णक्रम हो अर्थात् लघु गुरु समान क्रम से मिलें वह सम वर्णिक छंद होगा। वर्णिक सम वृत्तों में अक्षर तो समान होते ही हैं साथ ही लघु गुरु का क्रम एक-सा रहने से मात्राएँ भी बराबर ही होती हैं।

२—जिस छंद के पदों में गुरु लघु का कोई क्रम न हो, पर मात्राओं में समानता हो वह मात्रिक छंद होगा।

संख्यासूचक शब्द

काव्यों में अनेक स्थलों पर संख्या सूचित करने का काम पड़ता है। परंतु छंद के अनुरोध से मात्राओं की न्यूनाधिकता अथवा वर्ण की असुविधा के कारण एक, दो, तीन आदि संख्याएँ लिखने में अनेक अड़चनें उठानी पड़ती हैं। अतएव कवि लोग

प्रायः संख्यासूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं। नीचे एक से बीस तक की संख्याओं के लिए शब्द लिखे जाते हैं—

शून्य—आकाश।

एक—पृथ्वी, चंद्रमा, आत्मा।

दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्पजिह्वा, नदीकूल।

तीन—गुण राम, काल, अग्नि, शिवनेत्र, ताप।

चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ, पाद।

पाँच—कामशर, इंद्रिय, शिवमुख, पांडव, गति, प्राण, कन्या, यश, भूत, वर्ग, गव्य।

छह—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शास्त्र, ईति, कार्तिकेय के मुख, भ्रमर के पद।

सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, लोक, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल।

आठ—सिद्धि, वसु प्रहर, नाग, दिग्गज, योग।

नौ—भूखंड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाड़ी, रंध्र, द्रव्य।

दस—दिशा, दशा, अवतार, दोष।

ग्यारह—शिव।

बारह—सूर्य, राशि, भूषण, मास।

तेरह—नदी, परमभागवत, किरण।

चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या।

पंद्रह—तिथि।

सोलह—संस्कार, शृंगार, कला।

सत्रह—इसके लिए कोई शब्द नहीं है। एक और सात के कोई दो संकेत मिलाकर काम चलाया जाता है।

अट्ठारह—पुराण।

उन्नीस—इसके लिए भी कोई शब्द नहीं है एक और नौ के कोई दो संकेत मिलाकर काम चलाया जाता है।

बीस—नख।

उक्त संकेतों से संख्या का काम लेने में बड़ी भारी सुविधा यह है कि इनके बदले इनके पर्यायवाची शब्दों का भी उपयोग कर सकते हैं। चंद्रमा के लिए शशि, इंदु आदि अथवा शिव के लिए रुद्र, शंभु, ईश इत्यादि।

कविता में अंक लिखने के लिए आचार्यों ने यह नियम निर्धारित कर लिया है कि अंकों की गति दाहिनी ओर से बाईं ओर को होती है (अंकानां वामतो गतिः)। यदि १७ का बोध करना होगा तो 'चंद्र स्वर' न कहकर 'स्वर चद्र' कहेंगे। शब्दक्रम से 'स्वर चद्र' से ७१ का बोध होता है परंतु उक्त नियम के अनुसार १७ का बोध होगा।

मात्रिक छंद

(१) तोमर

'तोमर रासि[1] गल[2] अंत।

तोमर छंद का प्रत्येक चरण १२ मात्राओं का होता है। अंत में गुरु लघु (ऽ।) होते हैं।

उदाहरण

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल[3]।
कोप्यो समर श्रीराम। चल बिसिख[4] निसित[5] निकाम[6]॥

(२) उल्लाला

'उल्लाला तेरह कला।'

उल्लाला छंद के प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।*

१ बारह। २ गुरु लघु। ३ सर्प। ४ बाण। ५ तेज, चोखा। ६ सुंदर।

* इसी से मिलता जुलता एक 'उल्लाल' छंद है। किसी किसी ने

उदाहरण

बात पुरानी उड़ गई, गया पुराना ढंग है
नयी सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है ॥

(३) चौपई

'तिथि गल अंत चौपई माहिं ।'

चौपई के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु (ऽ।) आते हैं ।

उदाहरण

उपवन में अति भरी उमंग ।
कलियाँ खिलती हैं बहुरंग ॥
पर मिलता है उनको मान ॥
जो हैं सुखद सुगंध निधान[1] ॥

(४) चौपाई

'कल सोरह ज त बिन चौपाई'

चौपाई के प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं । इसके अंत में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।) का निषेध है, अर्थात् गुरु लघु (ऽ।) न आने चाहिए । अंत में एक लघु के होने से लय खटकने लगती है; परंतु दो लघु साथ आ जाएँ तो दोष नहीं रह जाता ।

उसको भी ' उल्लाला' लिख दिया है । वह मात्रिक अर्द्धसम छंद है । उसके पहले तीसरे पदों में १५-१५ और दूसरे चौथे पदों में १३-१३ मात्राएँ होती हैं । यथा—

जहँ घन विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर ।
बरसत सब ही विधि बेबसी अब तो चेतौ बीर बर !!

१ खजाना ।

उदाहरण

जहँ लगि[1] नाथ नेहु[2] अरु नाते[3]।
पिय बिनु तियहिं तरनि[4] तें ताते[5]॥
तनु धनु धाम धरनि सुरराजू[6]।
पति बिहीन सब सोकसमाजू॥

(५) रोला

'रखिए कल चौबीस संभु[7] सरिता[8] यति रोला।'

इसके प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। जिन रोला के चारो चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो उसे 'काव्य छंद' कहते हैं। प्राय: इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं। पर अंत में चार लघु या गुरु-लघु-लघु भी मिलता है।

उदाहरण

नव उज्जल जलधार हार हीरक[9] सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुकुता मनि पोहति[10]॥
लोल[11] लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥

(६) गीतिका

'रतन[12] रवि[13] कल अंत लग रख छंद रचिए गीतिका।'

गीतिका के प्रत्येक पाद में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु (।ऽ) होता है। इस छंद का मुख्य नियम तो यह है कि प्रत्येक पाद की तीसरी, दसवीं, सत्र-

१ तक। २ प्रेम। ३ संबंध। ४ सूर्य। ५ गरम। ६ इंद्र का राज्य। ७ ग्यारह। ८ तेरह। ९ हीरे का हार। १० पिरोती हैं। ११ चंचल। १२ चौदह। १३ बारह।

ह्वीं और चौबीसवीं मात्राएँ सदा लघु होती हैं। अंत में रगण (SIS) आ जाने से छंद श्रुतिमधुर हो जाता है।

उदाहरण

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं।
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोधवर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

(७) सार

'यति सोरह रबि अंतै दो गुरु छंद सार रचु नीको।'

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६, १२ के विश्राम से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु आते हैं। इसे 'ललितपद' भी कहते हैं।

उदाहरण

प्रगटहु रवि-कुल-रबि निसि बीतो प्रजा-कमल-गन फूले।
मंद परे रिपु गन[१] तारा-सम जन[२]-भय-तम[३] उनमूले[४]॥
नसे चोर-लंपट-खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बंदी-सूत चिरैयन[५] मिलि कल रोर[६] मचायो॥

(८) हरिगीतिका

'श्रृंगार[७] दिनकर[८] पै विराम, लगंत[९] में हरि गीतिका।'

हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६, १२ पर यति होती है। अंत में लघु गुरु (IS) होने चाहिए। इसका क्रम यों होना चाहिए—२+३+४+३+४; ३+४+५। जहाँ चौकल है वहाँ जगण (ISI) अति निषिद्ध है। अंत में रगण (SIS) श्रुतिसुखद होता है।

---

१ शत्रु लोग। २ दास। ३ अंधकार। ४ नष्ट हो गया। ५ मागध, बंदी और सूत (व्यास) रूपी पक्षियों ने। ६ मधुर ध्वनि। ७ सोलह। ८ सूर्य, बारह। ९ अंत में लघु गुरु।

उदाहरण

निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो।
दुख-दाह[१], आधि-व्याधि[२] सबकी एक साथ समाप्ति हो।
ऊपर कि नीचे एक भी सुर[३] है नहीं ऐसा कहीं।
सत्कर्म में रत[४] देख तुमको जो सहायक हो नहीं॥

(९) वीर

'सोरह तिथि[५] यति अंत गला[६] हो, गाओ वीर छंद अभिराम।'

सोलह और पंद्रह की यति से ३१ मात्राओं का वीर छंद होता है। अंत में गुरु लघु होते हैं। इस छंद को 'आल्हा' भी कहते हैं।

उदाहरण

सुमिरि भवानी जगदंबा[७] का श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वती तुमका ध्यावौं, माता कंठ बिराजौ आय॥
जोति बखानौं जगदंबा कै, जिनकै कला बरनि ना जाय।
सरदचंद[८] सम आनन[९] राजै, अति छबि अंग अंग रहि छाय॥

(१०) त्रिभंगी

'दिसि[१०] सिधि[११] बसु[१२] संगी जन रस[१३] रंगी छंद त्रिभंगी, गांत भलो।'

यह छंद ३२ मात्राओं का होता है। १०, ८, ८, ६ पर यति होती है। अंत में गुरु होता है। इसके किसी चौकल में जगण (ISI) न पड़ने पाए।

उदाहरण

परसत पद पावन सोक-नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक, संमुख है कर जोरि रही।

---

१ दुःख की जलन। २ मन का और शरीर का कष्ट। ३ देवता। ४ लीन। ५ पंद्रह। ६ गुरु लघु। ७ जगज्जननी पार्वती। ८ शरद ऋतु का चंद्रमा। ९ मुख। १० दस। ११ आठ। १२ आठ। १३ छः।

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय[1] बड़भागी चरनन लागी जुगल नयन जल धार बही॥

अर्द्धसम

(१) बरवै

'विषमै रबि कल बरवै, सम मुनि[2] साज।'

बरवै छंद के विषम अर्थात् पहले तीसरे पदों में १२ मात्राएँ और सम अर्थात् दूसरे चौथे चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक दल* में १९ १९ मात्राएँ हो जाती हैं। सम पदों के अंत में जगण (।ऽ।) रोचक होता है।

उदाहरण

प्रेम प्रीति को बिरवा[3] चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

(२) दोहा

'विषमै सरित ज न सिव समनि, दोहा गल रखि अंत।'

दोहे के पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों में १३-१३ तथा सम (दूसरे चौथे) चरणों में ११-११ मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के आदि में जगण वर्जित है। सम चरणों के अंत में गुरु लघु होना चाहिए।

उदाहरण

कोऊ कोरिक[4] संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति[5] सदा बिपति-बिदारन हार[6]॥

(३) सोरठा

'तेरह सम बिषमेस उलटे दोहा सोरठा।'

---

१ अत्यंत। २ सात। ३ वृक्ष। ४ करोड़। ५ यदुपति (श्रीकृष्ण)। ६ विपत्ति दूर करनेवाले।

* देखिए पृष्ठ ९४ की पाद-टिप्पनी।

सोरठा दोहे के ठीक विपरीत होता है अर्थात् दोहे के सम चरण सोरठे के विषम और दोहे के विषम चरण सोरठे के सम चरण हो जाते हैं। इसके विषम चरण में ११ तथा सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

सुनि केवट के बैन[1] प्रेमलपेटे[2] अटपटे।
बिहँसे करुनाऐन[3] चितै जानकी-लखन-तन[4] ॥

विषम

(१) कुंडलिया

'दोहा रोला कुंडलित करि कुंडलिया होय।'

कुंडलिया में २४-२४ मात्राओं के छह पद होते हैं। इस प्रकार यह १४४ मात्राओं का 'मात्रिक विषम छंद' है। आदि में दो दलों का एक दोहा और उसके बाद चार पदों का एक रोला जोड़-कर कुंडलिया छंद बनता है। दोहे के प्रथम चरण के आदि के कुछ शब्दों का रोला के चतुर्थ चरण के अंतिम शब्दों के साथ और दोहे के चतुर्थ चरण का रोला के आदि से सिंहावलोकन* होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्ध में प्रायः कवि का नाम रहता है।

उदाहरण

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में ताही में चित देइ।
ताही में चित देइ बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ चित्त में खेद न पावै।

---

१ वचन। २ प्रेमपूर्ण। ३ (करुणा + अयन = घर) दयालु। ४ ओर।

* देखिए पृष्ठ ३८।

कह 'गिरिधर' कबिराय यहै करु मन परतीतो[१] ।
आगे की सुधि लेइ समुझि बीती सो बीती ॥

(२) छप्पय

'बिरचहु छप्पय छंद को धरि रोला उल्लाल ।,

छप्पय भी छह पदों का मात्रिक विषम छंद है, इसके आदि में २४-२४ मात्राओं के चार पद रोला के होते हैं। अंतिम दो दल या तो २८-२८ मात्राओं के उल्लाल छंद के होते हैं अथवा २६-२६ मात्राओं के उल्लाला के।

उदाहरण

(१) नीलांबर परिधान[२] हरित पटपर[३] सुंदर है ।
सूर्य चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर[४] है ।
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मंडन[५] हैं ।
बंदीजन खग वृंद शेषफन सिंहासन हैं ।
करते अभिषेक पयोद[६] हैं बलिहारी इस वेश की ।
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश[७] की ।

(२) भीति[८] भंजिनी भुजा शक्ति दलिता[९] आहों की ।
उमड़े उर की आग दवा दारुण दाहों[१०] की ।
शौर्य[११] धैर्य की धरा सपूती की शुचि शाला[१२] ।
भाग्यचक्र की धुरी विजय की मंजुल माला ।
रणचंडी की संगिनी विभीषिका[१३] की धार है ।
काली का अवतार है नहीं नहीं तलवार है ॥

---

१ प्रतीति, विश्वास । २ पहनने का नीला वस्त्र । ३ मैदान । ४ समुद्र करधनी है । ५ गहना । ६ बादल । ७ ईश्वर । ८ भय । ९ कुचली हुई । १० जलन । ११ शूरता । १२ पवित्र घर । १३ भीषणता ।

वर्णिक छंद

(१) इंद्रवज्रा

'ता ता ज गा गा शुभ इंद्रवज्रा'

यह ग्यारह अक्षरों का वर्ण वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त त ज ग ग' (SSI SSI ISI S S) होता है।

उदाहरण

आधार कोई जिनका नहीं है।
हा ! दुःख ही दुःख सभी कहीं है।
तू ही उन्हें आकर गोद लेती।
हे मृत्यु ! तू ही चिर शांति[1] देती ॥

(२) उपेंद्रवज्रा

'ज ता ज गा गाइ उपेंद्रवज्रा'

यह ग्यारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' (ISI SSI ISI S S) होता है। इंद्रवज्रा का पहला अक्षर लघु कर देने से उपेंद्रवज्रा वृत्त बनता है।

उदाहरण

बलाभिमानी धरणी धनेश[2]।
कहो कहाँ हैं अब वे जनेश[3] ॥
चले गए हैं सब आप आप।
हुआ न दो ही दिन का प्रताप ॥

इस छंद के पादांत के वर्ण विकल्प से गुरु ही माने जायँगे।

सूचना—'इंद्रवज्रा' और उपेंद्रवज्रा' के चरणों के मिलाने से कई प्रकार के छंद बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

१ बहुत दिनों तक रहनेवाली शांति। २ पृथ्वी और धन के स्वामी। ३ राजा।

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते ।
तुम्हीं अघों[१] से हमको बचाते ॥
हे ग्रंथ ! विद्वान् तुम्हीं बनाते ।
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते ॥

(३) वंशस्थविलम्

'विचार वंशस्थ ज ता ज रा करो ।'

यह बारह अक्षरों का वृत्त है । इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज र' (ISI SSI ISI SIS) होता है ।

उदाहरण

सशांति आते उड़ते निकुंज में ।
सशांति जाते ढिग[२] थे प्रसून[३] के ॥
बने महा नीरव[४] शांत-संचयी ।
सशांति पीते मधु को मिलिंद[५] थे ॥

(४) तोटक

'रख चार स तोटक को रचिए'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है । इसके प्रत्येक चरण में चार सगण (IIS IIS IIS IIS) होते हैं ।

उदाहरण

जितने गुण-सागर नागर[६] हैं ।
कहते यह बात उजागर[७] हैं ।
अब यद्यपि दुर्बल आरत[८] हैं ।
पर भारत के सम भारत है ॥

---

१ पापों । २ पास । ३ फूल । ४ मौन, चुप । ५ भौंरे । ६ चतुर । ७ प्रसिद्ध । ८ आर्त, दुःखी ।

(५) भुजंगप्रयात

'य हैं चार ही यों भुजंगप्रयातम्'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार यगण (।SS ।SS ।SS ।SS) रहते हैं।

उदाहरण

कहूँ किन्नरी[1] किन्नरी[2] लै बजावैं।
सुरी[3] आसुरी[4] बाँसुरी गीत गावैं।
कहूँ यच्छिनी[5] पच्छिनी[6] लै पढ़ावैं।
नगी-कन्यका[7] पन्नगी[8] को नचावैं ॥

(६) द्रुतविलंबित

'द्रुतविलंबित के न भ भा र है'

इसमें बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (।।। S।। S।। S।S) होता है। इसे 'सुंदरी' भी कहते हैं।

उदाहरण

मन ! रमा[9] रमणी[10] रमणीयता।
मिल गईं यदि ये विधियोग[11] से।
पर जिसे न मिली कविता सुधा।
रसिकता सिकता[12] सम है उसे ॥

(७) मोतियदाम

'धरो शुभ मोतियदाम ज चार'

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण (।S। ।S। ।S। ।S।) रहते हैं।

---

१ किन्नरों की कन्याएँ। २ सारंगी। ३ देवताओं की कन्याएँ। ४ असुरों की कन्याएँ। ५ यक्षों की कन्याएँ। ६ पक्षी; मैना, कोकिल आदि। ७ पार्वत्य देशों की कन्याएँ। ८ सर्पों की कन्याएँ। ९ लक्ष्मी। १० स्त्री। ११ संयोग से, दैवात्। १२ बालू।

उदाहरण

अदेवन की उर आनि अनीति।
निबाहन को सुर-पालन-रीति।
सुधारन को जन को अधिकार।
धरयो हरि वामन को अवतार॥

(८) वसंततिलका

'गाओ वसंततिलका त भ जा ज गा गो'

यह चौदह अक्षरों का छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग, (SSI SII ISI ISI S S) रहता है।

उदाहरण

रे क्रोध जो सतत[1] अग्नि बिना जलावे।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे।
ऐसा न और तुझ सा जग बीच पाया।
हारे विलोक हम किंतु न दृष्टि आया॥

(९) मालिनी

'रच न न म य या से, मालिनी लिद्धि लोक'

यह पंद्रह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'न न म य य' (III III SSS ISS ISS) होता है। इसमें विश्राम ७, ८ अक्षरों पर पड़ता है।

उदाहरण

प्रिय पति वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है?
दुख जलनिधि-डूबी[2] का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा[3] कहाँ है?

---

१ बराबर निरंतर। २ दुःख रूपी समुद्र में डूबी हुई (यशोदा)। ३ आंखों की पुतली के समान (श्रीकृष्ण)।

(१०) शिखरिणी

'रस[1] स्थाणू[2] युक्ता य म न स भ ला गा शिखरिणी'

इस वृत्त में १७ अक्षर होते हैं। ६, ११ पर विराम होता है। प्रत्येक चरण में 'य म न स भ ल ग' (।ऽऽ ऽऽऽ ।।। ।।ऽ ऽ।। । ऽ) होता है।

उदाहरण

किए जाने से भी फिर फिर सदा प्रश्न तुमसे।
नहीं होते जी में कुपित तुम हे ग्रंथ ! हमसे।
तथा शिक्षा देते तुम नित बिना ताड़न[3] हमें।
अतः हो क्यों प्यारे फिर तुम हमारे न जग में ॥

(११) मंदाक्रांता

'मदाक्रांता श्रुति[4] रस[5] युगै[6] मा भ ना ता त गा गा'

इसमें १७ अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'म भ न त त ग ग, (ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽ ऽ) होता है। ४, ६, ७ पर विराम रहता है।

उदाहरण

तारे डूबे तम[7] टल गया छा गई व्योम[8] लाली।
पंछी बोले तमचुर[9] जगे ज्योति फैली दिशा में।
शाखा डोली सफल तरु को कंज[10] फूले सरों में।
धीरे धीरे दिनकर[11] कढ़े तामसी[12] रात बीती ॥

(१२) शार्दूलविक्रीडित

'है सूर्य[13] स्वर[14] मा स जा स त त गा शार्दूलविक्रीडितम्'

इसमें १९ अक्षर होते हैं। १२, ७ पर विराम होता है। प्रत्येक

---

१ छह। २ (शिव) ग्यारह। ३ दंड। ४ चार। ५ छह। ६ सात। ७ अंधकार। ८ आकाश। ९ ताम्रचूड़, मुर्गा। १० कमल। ११ सूर्य। १२ अंधकारवाली। १३ बारह। १४ सात।

चर 'म स ज स त त ग' (SSS IIS ISI IIS SSI SSI S) होता है।

उदाहरण

प्रात:काल अपूर्व यान[1] मँगवा औ साथ ले सारथी।
ऊधो गोकुल को चले सदय हो स्नेहांबु[2] से भींगते।
वे आए जस काल कांत[3] ब्रज में देखा महामुग्ध हो।
श्रीवृंदावन की मनोज्ञ[4] मधुरा श्यामायमाना[5] मही॥

(१३) मत्तगयंद

'मत्तगयंद रचो रखि भा सत ढंग मनोहर मंजु सवैया'

बाईस से छब्बीस अक्षरों तक के वर्ण वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। इनमें 'मत्तगयंद' बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

मोतिन कैसी[6] मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै।
ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त[7] कहावै॥

(१४) दुर्मिल

'रखि आठ स को रचिए मन दै अति उत्तम दुर्मिल को'

इस सवैया में आठ सगण होते हैं।

तन की दुति[8] स्याम सरोरुह[9] लोचन कंज की मंजुलताई[10] हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छवि भूरि[11] अनंग[12] की दूरि धरैं।

---

१ सवारी, रथ। २ आँसू। ३ सुंदर। ४ मनोहर। ५ श्याम के रंग में रंगी हुई। ६ समान। ७ कविता। ८ (द्युति) कांति। ९ कमल। १० सुंदरता। ११ अत्यंत। १२ कामदेव।

दमकैं दंतियाँ दुति दामिनी[1] ज्यों किलकैं कल[2] बाल बिनोद करैं ॥
अवधेस के बालक चारि सदा *तुलसी* मन मंदिर में बिहरैं ॥

(१५) मनहरण कवित्त

यह दंडक वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। १६, १५ पर विराम होता है। अंत में एक गुरु वर्ण होना आवश्यक है। यदि ८,८,८, ७ का क्रम रहे तो लय बढ़िया होती है।

उदाहरण

उकुति[3] अनेक ही[4] पै एकहू न कही परै
टेक तो हमारी कैकईहू तें सठिन[5] है।
कहै *पदमाकर* न छाया है छमा[6] की ऐसी
काया[7] कलुष[8] क्रोध मोह माया[9] की मठिन है।
यातें गुह[10] गीध[11] लौं लो बीधियो[12] न मोसों राम !
मेरी मति घोर या कठोर कमठिन[13] है।
लंका गढ़ तोरिवे तें रावन सों रोरिबे[14] तें
मोहिं भव बंधन तें छोरिबो कठिन है ॥

सूचना—हिंदी के छंदों में शब्दों का लघु गुरु होना अधिकांश में उच्चारण के अधीन है। इसलिए ऊपर के उदाहरणों का लक्षण के साथ मिलान करते समय उस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। प्रयत्न किया गया है कि उदाहरणों में लघु गुरु का व्यतिक्रम न पड़े, फिर भी उससे बचना हिंदी में असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

———

१ छोटे छोटे दाँत विजली की तरह चमकते हैं। २ सुंदर। ३ कथन (बात)। ४ थी। ५ दुष्ट। ६ पृथ्वी। ७ शरीर। ८ पाप। ९ वन। १० निषादराज। ११ जटायु। १२ मत लगाना। १३ कच्छपी १४ लड़ने से।

